अर्थात्

योग साधन पर विचार

वेदों शास्त्रों और इतिहासों तथा महात्माओं के वचनों से पता लगता है कि प्राचीन काल में योग साधन का मनुष्य मात्र में चरचा और व्यवहार था इसके आचार्य अधिकता से पाये जाते थे प्रत्युत प्रत्येक विद्वान् अपने जीवन का अन्तिम भाग योगाभ्यास में ही व्यतीत करता था। उस धार्मिक समय को व्यतीत हुए अब सहस्रों वर्ष होगये इस बीच में संसार में सहस्रों परिवर्त्तन होगये। वेदोक्त धर्म और योग के साधन की विधि का भी लोप होगया यहाँ तक छिपगए कि पुस्तकों तथा शास्त्रों में जो विधि लिखित हैं उनको समझने की भी योग्यता हमारे अन्दर न रही, अगर कोई विद्वान समझ भी लेवे तो बिना किसी अभ्यासी आचार्य योगीके बतलाए हुए इसपर अभ्यास भी नहीं कर सकता। इन्हीं कारणवश योग साधन के सम्पूर्ण साधनों से मनुष्य जाति हीन होगई। केवल विद्वानों की जिह्वा और पुस्तकों में इसका नाम मात्र ही शेष रह गया।

सैंकड़ों मत मतान्तर इस पृथिवी पर फैल गए उन सबने वेद विरुद्ध उपासना के मार्ग नियत करके किसी एक मार्ग का नाम योग साधन भी रख दिया, परन्तु अनुभव करने पर वे सब मार्ग निष्फल सिद्ध हुए अतएव सज्जनों व सच्चे भक्तों ने योग रूपी रत्न को लुप्त हुआ जान उसके लिये श्रम करना भी त्याग दिया।

दैवात्

उन्नीसवीं शताब्दी में विशेष तीन साधन ऐसे पैदा हुए जिन्होंने मनुष्य जाति की रुचि को योग साधन की ओर लगा दिया १ मत मतान्तरों की हल चल २ मेस्मरिज़म की प्रसिद्धी ३ पदार्थ विद्या की उन्नति उक्त तीनों साधनों ने एक सद्य रुचि आत्मिक ज्ञान की लगादी,

१ प्रथम साँप्रदायिक हल चल तो भारत वर्ष में पैदा हुई जिस से प्राचीन प्राच्य विद्या और सच्चे वैदिक धर्म की ज्ञानकारी का बड़ी धूम धाम के साथ चरचा होने लगी और हम को अच्छी तरह ज्ञात हो गया कि मोक्ष प्राप्त करना जीवात्मा का मुख्य और प्रधान कर्त्तव्य है और मोक्ष विना आत्मिक ज्ञान और योग साधन के प्राप्त हो ही नहीं सकती है।

द्वितीय–मेस्मरिज़म की प्रसिद्धी प्रतीची (पश्चिमी) दुनियाँ में पैदा हुई और खोज करने से प्रतिफल यह निकला कि यह विद्या प्राच्यों से ही प्रतीची में गई बल्कि भारतवर्ष के एक पुराने चुटकला के नाम से यह प्रतीची (पश्चिम) में प्रसिद्ध

हुआ। जिस से यह भी पता चला कि असली योग साधन की यह एक छोटी सी शाखा है, सो भी एक बिगड़ी हुई दशा में मौजूद है जिसका नाम मेस्मरिज़म रक्खा गया, उसका यहाँ थोड़ासा वर्णन किया जाता है जो कि सबलोग समझ सकें कि मेस्मारिज़म क्या वस्तु है और किसतरह मनुष्य इस में प्रभावी बन सकता है।

प्रभाव (अमल) मेस्मरिज़म करनेवाले मनुष्य में योग साधन न करने वालों की तरह न्यून से न्यून से दो विशेष गुण होने चाहियें, प्रथम नीरोग पुष्ट और ब्रह्मचारी हो, वीर्य्य की रक्षा, बुद्धि बल और शारीरिक बल में पूर्ण हो विशेष कर आखों की दृष्टि भी तीव्र और स्वच्छ हो।

द्वितीय मन और मन के चिन्तन नेक हों क्रोध लालच ईर्षा घृणा आदि दुर्गुणों से रहित शान्ति और सन्तोषी दयालू और न्याय से पूर्ण हो॥

उक्त दोनों प्रकार के नियमों में जो मनुष्य ठीक हो वह मेस्मरिज़म कर सकता है॥

इसका अभ्यास और अमल करने के समय में श्रेष्ठ और सत्वगुणी भोजन करना उत्तम है॥ तमोगुणी और स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाले भोजन से सदा बचा रहे मेस्मरिज़म के उत्तम अमल तीन प्रकार के हैं।

१-प्रथम दृष्टिका बल बढ़ाकर उसमें विद्युत और आकर्षण शक्ति के बढ़ाने का पूरा अभ्यास करे। अभ्यास करने में शीघ्रता नकरे किन्तु धीरे २ उन्नति करे॥

द्वितीय--समाधि योग से मानसिक शक्ति को बढ़ाना और उसको एकाग्र करने का अभ्यास करे जिस से अन्य मनुष्यों और वस्तुओं पर तत्काल प्रभाव हो सके।

तृतीय-अन्तःकरण को शुद्ध करके मनको सात्विक बनाने का अभ्यास जिससे उत्तम विचार होकर छिपी हुई बातें और दूर २ के हालात मालूम हो सकें॥

अब पूर्वोक्त तीनों प्रकार के अभ्यासों की विधि का वर्णन किया जाता हैं॥

दृष्टि बल बढ़ाने की विधि

इस काम को वह मनुष्य प्रारम्भ करे जिसकी दृष्टि बलवती और बुद्धि तीव्र हो वर्ना बड़ी हानी पहुंचने का भय है। सूर्य्यो उदय होने से पूर्व किसी शुद्ध औरएकान्त जगह पर बैठ जावे और अपने सम्मुख एक गज़ के अन्तर पर एक आइना रक्खे अथवा दीवार पर लटका देवे। उस आइनेके बीचों बीच एक स्याह बिन्दु अथवा काले काग़ज़का बिन्दु कतरकर चिपका देवे इस बिन्दु पर अपनी नज़र ठहरानेका अभ्यास करे और ऐसा यत्न करे कि पलक न गिरने पावे कि बिना पलक डालने के जितनी देर तक इक टक देख सके किन्तु उसी बिन्दु में निगाह लगी रहे जब देखते २ निगाह थक जावे और पलक भी झपक जावे तो थोड़ी देर तक आँखें बन्द करके आराम लेवे और उठ बैठे इस प्रकार प्रति दिन अभ्यास का समय बढ़ाता जावे यहाँ तक कि एक घण्टे तक निरन्तर निगाह ठहराने की शक्ति हो जावेगी तो आकर्षणकरने की शक्ति पैदा होने लगेगी।

जितनी देर प्रातः काल शीशा पर अभ्यास करे उतनी ही देर चाँदनी रात में चन्द्रमा में निगाह ठहराने का यत्न करे इस से बड़ी शान्ति प्राप्त होती है बल्कि दिन के अभ्यास करने की उष्णता शान्त हो कर एक विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिससे शीघ्र उन्नति होती है इस आकर्षण शक्ति का प्रभाव दूसरे मनुष्यों पर विद्युत की तरह से पड़ने लगता है इसके बाद एक सुन्दर लड़का या लड़की जो अनुमान ८ या दश वर्ष से अधिक आयु का न हो अभ्यास बढ़ाने के लिये प्रथम अपना केन्द्र बना कर इनपर अभ्यास करे और आकर्षण शक्ति से काम लेवे।

(२) समाधि योग से चिन्तन शक्ति को बढ़ाने की विधि

सूर्योदय से पूर्व जब कि नींद और सुस्ती न हो शारीरिक शुद्धि के पश्चात् एकान्त शुद्ध स्थान में शान्ति पूर्वक बैठ जावे फिर अपने विचारमें कोई वस्तु लावे और उसपर ध्यान लगावें और उस में ऐसा लीन होवे कि जो उसका स्वरूप प्रत्यक्ष हो जावे पहले दिन थोड़ा सा अभ्यासकरे पुनः प्रतिदिन अभ्यास शक्ति के समय को बढ़ाता जावे धीरे २ वह वस्तु ध्यान में साफ़ नज़र आने लगेगी पुनः किसी दूसरी वस्तु या किसी स्थान व बगीचा या शहर का ध्यान करे जब वह भी ध्यान में नज़र आने लगे तो फिर अन्य दूसरी चीज़ों को ध्यान में लावे इस तरह करने से ध्यान की शक्ति ऐसी बढ़ जावेगी कि जिस चीज़ का ध्यान किया जावेगा वह तत्काल ध्यान में आजावेंगी बल्कि

दूसरे मनुष्यों जानवरों और वृक्षों पर भी इसका प्रभाव होने लगेगा ।

(३) मानसिक तेज बढ़ाने की विधि

उक्त दोनों विधियों से निवृत्त होकर अभ्यासी एकान्त में उच्च विचारों में लवलीन रहाकरे और अपने विचारों को अपने अभिमत लड़के या लड़की के दिल पर प्रभावित करने का यत्न करे, जब अभिमत पर प्रभाव होने लगे तो फिर अभिमत को सामने बिठा कर उसको आज्ञा देवे कि वह कोई बात अपने दिल में सोचे, जब वह सोचने लगे तो अपने आप स्वयं आखें बन्द करके विचार करे कि यह क्या सोच रहा है या इसके दिल में क्या बात है। इस तरह अभ्यास करने से जब अभिमत के मन का हाल ठीक मालूम होने लगे तो फिर दूसरे मनुष्यों के दिल का हाल जानने का यत्न करे धीरे २ इस काम में भी उन्नति होगी और मानसिक शक्ति बढ़ती जावेगी- इन तीनों बातों से निवृत्त होकर और अपनी मानसिक शक्ति व ध्यान का बल बढ़ाने के बाद अभ्यासी अपने हाथों में विद्युत शक्ति को बढ़ाने का यत्न करे जो बढ़ी हुई शक्ति ध्यान की सहायता से थोड़े ही दिन के अभ्यास से प्राप्त हो जाती है अपने अभिमत यानी लड़के को अपने सामने बिठला कर इस पर हाथ की हरकत से झाँइयाँ (पास) देकर आँखों की कशिश और ध्यान की शक्ति का ज़ोर उस पर डाले अभिमत पर तत्काल हर तरह का असर पड़ेगा अगर उसको सो जाने को

कहा जायगा तो, नींद का प्रभाव होकर शीघ्र सो जावेगा और इच्छानुकूल बातों का वर्णन करेगा।

इस तरह अनेक तरह के प्रभाव उस पर पड़ सकते हैं— अभ्यास बढ़ाने पर यहाँ तक उन्नति हो जाती है कि छोटेर पौदों और जड़ वस्तुओं पर भी प्रभाव पड़ने लगता है, लेकिन जिस तरह की बातें मेस्मरिज़म से होती हैं उनको विद्वान् और धार्मिक लोग खेल तमाशों के सिवाय और कोई ऊंचा दरजा नहीं देते, और कोई अधिक सूक्ष्मदर्शी इसको कुछ अच्छा नहीं समझते हैं निश्चित विधि तो आत्मिक बल बढ़ाने और मोक्ष प्राप्त करने का पातंजल योग साधन ही है इसके विरुद्ध अन्य सब इसकी प्रति कृति और प्रतिकूल विधियाँ हैं जिनको प्रति फल अच्छा नहीं है और थोड़े काल के पश्चात् ही विघ्न उत्पन्न हो जाने का भय होता है इसी तरह अन्य मत मतान्तरों के भी प्रकार योग के विरोधी फैले हुए हैं।

अब योग साधन का वर्णन और प्रकार प्रारम्भ होता है जो सब से ऊंचा और मुख्य मार्ग मोक्ष प्राप्त करने का है।

प्रथम अध्याय

योग साधन

प्र०—योग साधन का अर्थ क्या है।

उत्तर—ईश्वर से अपने आत्मा को मिलाने के लिये जो अभ्यास करने होते हैं उन्हीं को योग साधन कहते हैं अर्थात् ईश्वर से मिलने के ज़रिये।

प्रश्न-ईश्वर से मिलना कैसा? ईश्वर तो हम से दूर या पृथक् नहीं जिससे मिलने की इच्छा की जावे, जब कि वह सर्वव्यापक है, सब जगह मौजूद है, कोई वस्तु उसकी व्यापकता से पृथक् नहीं, हमारे अन्दर और बाहर रोम २ में है तो फिर मिलना कैसा और कैसा प्रयत्न योग अभ्यास, जिस से पृथक्ता होती है उससे मिलने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु जब जीव और ईश्वर में पृथक्ता वा दूरी किंचत् भी नहीं बल्क् वह जीव के अन्दर भी व्यापक है, तो मिलने के लिये अभ्यास करने की क्या आवश्यकता है। यदि ईश्वर से मतलब किसी मुख्य सत्ता वा साकार वस्तु से मिलने का हो तो अभिप्राय और है परन्तु हमारा विचार परमात्मा को साकार मानने के विरुद्ध है। क्योंकि ऋषि महर्षि कृत पुस्तकें और पदार्थ विद्या व न्याय शास्त्रादि दार्शनिक विद्यायें सिद्ध करती हैं कि ईश्वर साकार शरीर धारी नहीं किन्तु निराकार सर्व शक्तिमान है। वह सब जगत् व जो कुछ प्रत्यक्ष और परोक्ष है सब को उत्पन्न धारण पोषण करने वाला है, उस को कोई प्रजापति कोई ब्रह्म ईश्वर आदि अनेक नामों से पुकारते हैं

अतएव उसको अपने से दूर जानकर मिलने मिलाने का मतलब नहीं क्योंकि सर्व व्यापक होने से वह अशरीर निराकार है जिस को कोई प्राकृतिक आँखों व हाथों से न देख सकता और न छू सकता है। फिर मिलने से अभिप्राय क्या है।

उत्तर–ईश्वर से मतलब उसी परमात्मा वा ब्रह्म से है जिसको पूर्ण विद्वान आप्त पुरुषों ने न्याय शास्त्र और पदार्थ विद्या से सिद्ध किया है। और जिसकी सिद्धि आज से लाखों वर्ष पहिले चारों वेदों ने संसार में प्रत्यक्ष की है। क्योंकि वेद ईश्वर को कोई एकदेशी सत्ता वाली वस्तु नहीं बतलाते बल्कि उनमें स्पष्ट उपदेश है कि ईश्वर सत् चित् आनन्द सरूप सर्व व्यापक और निराकार है, अर्थात् सनातन चेतन अजर अमर निर्विकार और सर्वज्ञ है क्योंकि विना उक्त तीनों गुणों की स्थिति के वह इस जगत् का कर्त्ता नहीं हो सकता फिर विना सर्व व्यापकता के वह इस विचित्र सृष्टि क्रम को एक क्षण भर भी स्थिर नहीं रखसकता क्योंकि प्रत्येक पद २ पर और सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं में उसकी शक्तियों से विचित्र कार्य्य इस सृष्टि में हो रहे हैं और प्रत्येक क्षण में प्रत्येक वस्तु में उपचय (जमा) और अपचय (खारिज) के कार्य्य होते रहते हैं। इसलिये प्रत्येक स्थान व लोक और वस्तु उसकी व्यापकता से स्थित हुए संसार चक्र को चला रहे हैं।

विना निराकारता के तमाम ब्रह्माँड आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, में ईश्वर व्यापक नहीं हो सकता और न परमाणुओं में अतः ईश्वर साकार नहीं।

उसी परमात्मा को मानते हुवे और पूर्वोक्त गुण 'कर्म' जान कर योगाभ्यास द्वारा विचार करते हुए ही ध्यान और प्राप्त करने का मार्ग ठीक है इसके विरुद्ध जो लोगों ने ईश्वर से मिलने और बात चीत करने का ध्यान अपने मन में जमाया है वह वास्तव में भ्रम युक्त है तथा न्याय शास्त्र और पदार्थ विद्या से भी विरुद्ध है अतः जैसे ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे ही धारण करने से ईश्वर की प्राप्ति हो सक्ती है।

१–जो वस्तु अपने से दूर है उसके समीप जाने से वह मिल सक्ती है परंतु जीवात्मा और परमात्मा में दूरी वा फ़ासिला नहीं क्योंकि परमात्मा जीवात्मा के अन्दर इस तरह से व्याप्त है जिस तरह से शीशा में हमारा प्रतिबिंब अतः अपने अन्दर ही व्याप्त परमात्मा के मिलने का एक विशेष साधन योगाभ्यास ही है

२–वह जीव के अन्दर व्यापक होने पर भी उसको इन इन्द्रियों से कोई नहीं देख सक्ता जब तक कि विवेक के अन्दरूनी चक्षु न खुलें अतः आत्मा ही परमात्मा को देख सक्ता वा मिल सक्ता है मन बुद्धि और इन्द्रियों की वहाँ पहुंच नहीं इसीलिये आत्मा को ईश्वर से मिलाने में मुख्य साधन योगाभ्यास ही है।

प्र०–मिलने और समागम करने से असली प्रयोजन तो यह है कि हम बात चीत करें और छूलेवें परन्तु परमात्मा से इस प्रकार का मिलाप वा मेल कदाचित नहीं हो सकता और न किसी का हुआ इस लिये यह ठीक नहीं क्योंकि बोलने

और स्पर्श करने से ईश्वर से मेल मिलाप हो तो उस ईश्वर के मुख और जीभ दोनों होने चाहियें।

उ०—आप का यह विचार ठीक नहीं क्योंकि व्याप्य और व्यापक होने से जीव और ईश्वर पानी और दूध की तरह सदा से ही मिले हुए हैं फिर विना विवेक के ऐसा मिलना तो जीव के लिये लाभकारी नहीं और बात चीत करना व छूना यह तो स्थूल शरीर धारी जीव का दूसरे शरीर धारी से हो सकता है जोकि दोनों अलग२ हैं परन्तु ईश्वर तो निराकार और जीवात्माभी निराकार है वहाँ दोनों में न शरीर न इन्द्रियाँ हैं फिर बात चीत व छूना कैसा।

अब आपको समझना चाहिये कि जीवात्मा के तीन शरीर हैं १ स्थूल २ सूक्ष्म ३ कारण। स्थूल शरीर जो कि भौतिक अर्थात् पाँच भूत पृथिवी जल वायु अग्नि आकाश हैं इनसे बना हुआ है जिसमें कि जाग्रत अवस्था होती है। सूक्ष्म शरीर जो कि १७ तत्वों का है पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ५ कर्मेन्द्रियाँ ५ तन्मात्रा बुद्धि और मन इसमें स्वप्ना अवस्था होती है तीसरा कारण शरीर प्रकृति का है जिसमें कि सुषुप्ति अवस्था अर्थात् घोर निद्रा होती है उक्त तीनों शरीर को लेकर भी जीवात्मा परमात्मा को साक्षात् नहीं कर सकता है किन्तु (आत्मनात्मानम् वेद) जीवात्मा केवल अपने स्वरूप से ही परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है वहाँ पर मन वाणी व इन्द्रियों की पहुंच नहीं।

हाँ मन बुद्धि चित्त अहंकार जब योग साधन से शुद्ध हो

जाते हैं तो तब जीवात्मा को विवेक के प्राप्त कराने में सहायक होते हैं विवेकसे अविद्या का ढकना नाश होने पर जीवात्माको ब्रह्म का साक्षात्कार होता है ।

प्रश्न–योगाभ्यास के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति करने से जीवात्मा को क्या लाभ होता है उसकी क्या आवश्यकता है।

उत्तर–योगाभ्यास करने से जीवात्मा की अविद्या का नाश और मोक्ष की प्राप्ति होती है इसलिये योग करना ज़रूरी है और मोक्ष प्राप्ति से सब दुःखों का नाश और अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है और यह इच्छा जीवात्मा में स्वाभाविक रहती है कि मुझको दुःख कभी न हो और मुझको आनन्द ही सदा मिले। परन्तु दुःख और अविवेक का नाश विना योग के नहीं जब दुःख और अविवेक का नाश हो जाता है तब ईश्वर का साक्षात्कार होने से मुक्ति पुनः मुक्तिमें सदा आनन्द की प्राप्ति रहती है, इसी की जीवात्मा को बड़ी चाहना थी वही प्राप्त हो गया अतःएव योगाभ्यासें ही इस आनन्द की प्राप्ति में मुख्य साधन है इस पर एक दृष्टान्त देकर आप को समझाऊंगा, कि आनन्द की प्राप्ति के लिये मनुष्य क्या आपत्तियाँ सहन करता है॥

एक यात्री यात्रा करने को चला परन्तु उस के पास से खाने पीने का सामान सब समाप्त हो गया और एक बड़े भारी जंगल में होकर जा रहा था जब भूख सताने लगी तो इच्छा करने लगा कि कोई ग्राम वा नगर आजावे तो कुछ खाने

का प्रबन्ध करूं परन्तु तीन दिन चलते २ गुज़र गए कहीं भी कोई ग्राम न आया अब भूख और प्यास से अत्यन्त व्याकुल होगया चलने की शक्ति भी न रही तब एक नदी के पास पहुंचा देखता क्या है कि नदी का निर्मल जल बह रहा है और एक किश्ती किनारे पर खड़ी हुई है उस नाव पर रोटी और एक कटोरे में दाल भरी हुई रक्खी है देखते ही इस को जीवन का सहारा मिला। वह दाल और रोटी एक मल्लाह की रक्खी हुई थी वह अपनी झोंपड़ी में से नमक लेने को गया था उस मुसाफ़िर को इस की बिलकुल चिन्ता न हुई क्योंकि।

क्षुधातुराणां नबलं न बुद्धिः।

भूखे मनुष्य की बुद्धि भी लोप हो जाती है प्राण सूखजाता है निर्बल हो जाता है इसी कारण से वह यात्री अपनी प्राण रक्षा के लिये झटपट किश्ती पर चढ़ गया और निर्भय होकर भोजन करने लगा और सब दालरोटी खा गया पुनः नदीसे जल पान किया जब मल्लाह ने देखा कि अरे ग़ज़ब यह कौन दुष्ट है जो मेरी रोटी खा गया वह लट्ठ लेकर दौड़ा और जैसे ही वह उसके पास मारने को आया मुसाफ़िर ने उसके चरणों में अपना शिर रख दिया और बोला कि भाई मैं तीन दिन का भूखा था इसी लिये विना विचार के तुम्हारा भोजन खा गया अब मैं तुम्हारा अपराधी हूं चाहे जो करो उस मल्लाह को उस पर दया आगई और उसने छोड़ दिया।

इस दृष्टान्त से यह तत्व ज्ञात हुआ कि देखो तृप्ति से

आनन्द की प्राप्ति के लिये मनुष्य ने कितना अपमान सहन किया और भूख रूपी दुःख को नाश किया।

हे मित्रअब विचारो कि इस दुनियावी आनन्द की प्राप्ति के लिये जो कि क्षणि कहै- मनुष्य कैसे २ कष्ट सहन करता है तो उस ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिये यदि इस मनुष्य जन्म में योगाभ्यास को कष्ट उठाकर एक वार सिद्धि करले तो हमेशा को कष्ट दूर हो जावे क्यों कि ब्रह्मानन्द की अपेक्षा दुनियावी सुख तो क्षणिक हैइसइसे स्पष्ट प्रत्यक्ष है कि आनन्द आत्मा की मुख्य शान्तिका कारण है जिसके विना शान्ति नहीं मिलती

जीवात्मा आनन्द की प्राप्ति के लिये वड़े पाप कर्मभी कर डालता है वह अच्छी तरह जानता है कि इस कर्म के करने में पाप है औरदंड भी मिलेगा लेकिन तो भी सुख मिलने की आशा से पाप करने लगता है।

संसारी सुख वहुत थोड़े समय के लिये होता, है परिश्रम अधिक करना पड़ता है उसके वदले में जो सुख मिलता है वह थोड़ी देर रहकर नष्ट होजाता है इस सुख की प्राप्ति में सारा जीवन लगा देता है और यही तृष्णा लगी रहती है कि मुझको अत्यन्त सुख मिलजावे इसीआशा को पूरन करने के लिये मोक्ष साधन की आवश्यक्ता है।

मोक्ष उस दशा का नाम है कि जब जीव आवागमन और सर्व दुःखों से छूट कर और ब्रह्मानन्द में मग्न रहता हुआ स्वतत्रं होजावे। इस मोक्ष दशा को प्राप्त करने के लिये ही योगाभ्यास की आवश्यकता है। विना इसके यह पद नहीं

मिलसका है पूर्ण आत्मिक उन्नति और सच्चा आनन्द इसी योग साधन ही से प्राप्त होता है।

प्र०--प्रथम योगसाधन का वर्णन क्रमशः समझाइयेगा पुनः उस आनन्द और मोक्ष का वर्णन कीजियेगा।

उ०--बहुत अच्छा प्रथम योग साधन का ही वर्णन किया जाता है पश्चात् मोक्ष का किया जावेगा।

योग साधन का वर्णन

योग साधन वह मार्ग और अभ्यास है कि जिससे मनुष्य ऊंची से ऊंची पदवी पर पहुंचता है। प्रारम्भ से ही इस मार्ग पर चलने से जीव का आनन्द बढ़ने लगता है धीरे २ वह उन्नति करता हुआ मुख्य आनन्द और प्रसन्नता को हासिल करता है। चारों वेद इसका उपदेश करते हैं कि जीवात्मा का उद्धार योग साधन के बिना नहीं हो सकता है न आत्मिक उन्नति और न मोक्ष ही मिल सकती है।

महाराज पतँजलि लिखते हैं कि जो आनन्द योग साधन में है उसके सामने संसार का सुख इतना भी नहीं कि जितना पहाड़ के सन्मुख चींवटी वा राई का दाना।

महर्षि मनुजी गृहस्थ आश्रम के लिये भी योग के करने का उपदेश करते हैं और संन्यास आश्रम में अपना सारा समय योग साधन में ही लगाना निश्चित कर्तव्य बतलाते हैं। श्री कृष्ण जी ने भी बारम्बार योग साधन की शिक्षा भगवद् गीता में दी है।

महर्षि गौतम व कणाद और महर्षि व्यास आदि ऋषियों ने भी योग की प्रशंसा करते हुए इसको सब से उच्च साधन बतलाया है।

दुनियां के विद्वान योग साधन की चाहना रखते हैं और इस के अमृत रूपी जल को संसार में बरसाने का यत्न करते हैं।

वर्त्तमान समय के पदार्थ ज्ञानी आत्मिक उन्नति की आवश्यकता को सब से अधिक विचार करते हैं इसके अतिरिक्त संसार की सारी उन्नति को तुच्छ समझते हुए चिन्तित हैं कि विना आत्मिक उन्नति के मनुष्य को कदापि शान्ति न मिलेगी। बल्कि संसारी तृष्णा की अग्नि जो प्रति समय बढ़ती रहती है, वह धीरे २ इतनी बढ़ जावेगी कि स्वयं मनुष्य की सत्ता को भस्म कर सत्यानाश कर देगी, इसलिये आवश्यकता है कि मानवी चाहना की अग्नि को शीतल करने के लिये शीघ्र कोई आत्मिक शाँति का उपाय संसार में प्रचरित होवे जिससे शाँति व आनन्द के प्रचार से मानवी सृष्टि हर्षित होकर फूले फले।

योग साधन की निरुक्ति और स्पष्ट वर्णन यदि किया जावे तो बहुत ही अधिक बढ़ जावेगा आगे चल कर इस की विधी का वर्णन करेंगे सम्प्रति तो इतना ही वर्णन किया जाता है कि जीवात्मा जो कि ससीम है और ससीम शक्ति रखता हुआ प्रत्येक पदार्थ ज्ञान की प्राप्ति करने में असक्त है, प्रत्येक वस्तु की जानकारी के लिये तृषित है। पर अपनी ताक़त की सीमा से बाहर नहीं जा सकता है न कुछ कर सकता है।

थाड़ा सा दुःख पड़ने पर घबरा जाता है इस संसार में एक जन्म के अतिरिक्त परलोक और ईश्वरीय महिमा से बिलकुल ही अज्ञानी है बल्कि यह भी स्मरण नहीं है कि मैं कब मरूंगा और मृत्यु के पीछे मेरी क्या गति होगी वा क्या प्रतिफल होगा इस लिये प्रियजिज्ञासु इस ससीम शक्ति से उन्नति पथ पर पहुंचाना और दुःखों से छुड़ाना और स्वतन्त्रता दिलाकर आत्मिक चक्षु खोलना यह योगविद्या ही का प्रभाव है जिसके द्वारा सैंकड़ों ब्रह्माण्डों की सैर और सृष्टि क्रम के भेदों से जान-कारी प्राप्त करके ब्रह्मानन्द का पद हासिल कर सक्ता है तमाम विद्वान् इस पथ और विधि को जानने के लिये प्रार्थी हैं कि आत्मा को वह नित्य सुख कि जिस में किंचित् भी दुःख न हो किस प्रकार और कहाँ से कैसे प्राप्त हो ।

मुख्य योग

योग साधन से असली मतलब उस आत्मिक अभ्यास से है कि जिस के द्वारा दुनिया के तमाम अविद्या के आवरणों का पर्दा सामने से हट जावे मनुष्य के अन्दर वह शक्ति पैदा हो जाती हैं जिनसे कि महा कठिन कार्य्य भी सुगम हो जाते हैं ब्रह्मानन्द में मगन हो जाता है पूरण शान्ति पाकर आत्मिक ज्योति से तमाम ब्रह्माण्डों को देख सकता है निज कामना के अनुसार स्वतन्त्रता में कोई रुकावट नहीं होती वह पूरण योगी सूर्य्य के समान प्रकाशमान दिव्य स्वरूप हो जाता है इसी कारण से इस योग साधन के लिये प्राचीन ऋषियों से लेकर वर्तमान समय के प्रचारक स्वामी शंकराचार्य्य

स्वामी दयानन्द सरस्वती स्वामी रामतीर्थ स्वामी विवेकानन्द स्वामी नित्यानन्द और स्वामी दर्शनानन्द आदि ने भी पूर्णतया घोषणा की है।

पश्चिम के पदार्थज्ञानी शोपनहार मिल्टन, अफ़लातून सुक़रात, अरस्तू, आदि ने भी आत्मिक योग विद्या की तरफ़ दुनियाँ को अपने लेख व मौखिक उपदेश के द्वारा संबोधित किया है बल्कि कोई भी ऐसा विद्वान् महात्मा नहीं गुज़रा जो इस योग विद्या का प्रेमी न हुआ हो अथवा जिसने अपनी प्रेम दृष्टि इस पर न डाली हो वा इस की ढूंढ़ खोज में और प्रचार में न लगा रहा हो। बहुत काल से योग साधन के विधान गुप्त हो गये थे इस के ज्ञाता सँसार से मिट गये और उनमें से कोई पहाड़ों व एकान्त स्थानों में गुप्त हैं इस लिये इसका स्पष्ट वृत्तान्त व सुगम विधानों का मिलना अत्यन्त कठिन हो गया वैसे तो इसका थोड़ा बहुत वर्णन सब संप्रदा-यों व पुस्तकों में पाया जाता है परन्तु जो पुस्तकें इस विद्या की पूर्वकाल में उपस्थित थीं वे तो इस पृथिवी तल से नष्ट होगई हैं। प्रथम तो यह विद्या कण्ठाग्र गुरु शिष्य परंपरा से अधिकतर प्रचरित रही पुस्तकें थोड़ी ही लिखी गईं परन्तु जो पुस्तकें लिखी हुई थीं वे बीच के समय में नष्ट हो गईं। जिनके नष्ट होने का कारण प्रथम तो अविद्या का विस्तार और बचे खुचे विद्वानों की बेपरवाही करना हुआ द्वितीय नवीन मतों का फैलना जैसे बुद्धमत का तमाम भारत पर छा जाना और प्राचीन पुस्तकों का समाप्त होना इसके पश्चात् जो कुछ

शेष रहा वह अन्य मुहम्मदी आदि नवीन मतों ने नए किया। सम्प्रति प्राचीन पुस्तकों में से केवल महर्षि पतंजलि कृत योग दर्शन शेष रहा है जिससे योग साधन का सच्चा हाल ज्ञात हो सकता है परन्तु शोक तो यह है कि वह पुस्तक वैदिक काल की रची हुई है और उस में नियम इस प्रकार के हैं और ऐसे यम नियम स्थिर किये गए हैं जो वर्त्तमान काल के मनुष्यों के लिये महाकठिन और असह्य मालूम होतेहैं ये इसको पढ़कर शोक करते और कह देते हैं कि न तो ये यम नियम हम से सध सकेंगे और न हम योग साधन की साधारण प्रभा को भी देख सकेंगे उनको यह बातें लोहे के चना चवाने से न्यून नहीं ज्ञात होती हैं वे अपनी हालत और वर्त्तमान कालको देख कर इसको असम्भव समझ कर मौन हो जाते हैं और उदासीनता के साथ पुस्तक को सन्दूक वा अलमारी में रख देते हैं पुनः किसी साधु महात्मा वा योगी की खोज में रहते हैं कि कदा चित उनसे कोई सीधा और सरल मार्ग मिल जावे।

अब महर्षि पातंजल के योग शास्त्र का प्रथम वर्णन किया जाता है इस के पश्चात् वह निर्णय किया हुवा वर्णन होगा जो वर्त्तमान काल के मनुष्यों के लिये अत्यन्त निश्चय से ज्ञात किया गया है। जिस से कि इस वर्त्तमान काल के मनुष्यों को अत्यन्त सुगमता हो, वे साधारण प्रकार से इसको आरम्भ करके उन्नति करते चले जावें, और प्रत्येक मनुष्य अपनी अवस्था सुधार सके और योग साधन का प्रचार मनुष्यों में फैला कर यश का भागी बने॥

योग साधन के मार्ग का वर्णन

॥ ओ३म् ॥

प्राचीन पुस्तक का ज्ञान

द्वितीय अध्याय

योग शास्त्र का वर्णन

महर्षि पातंजल ने ऐसे मनुष्यों के लिये कि जिन के अन्तः-करण में साँसारिक भोगों की तृष्णा भरी हुई हैं और संस्कार भी अपवित्र हैं सब से प्रथम यम नियमों के साधन का उपदेश किया है—

यम नियमों का वर्णन

यम पाँच प्रकार के होते हैं।

(अहिंसा सत्या स्तेय ब्रह्मचर्य्या परिग्रहाः यमाः) सूत्र पा० यो०

अर्थात् १—अहिंसा २—सत्य ३—अस्तेय ४-ब्रह्मचर्य्य ५—अपरिग्रह

१—अहिंसा

मन से वचन से व कर्म से किसी प्राणी को दुःख देने का विचार वा दुष्ट वचन व प्रहार कभी न करे॥ मन में शत्रुता की वासना रहने से मन अपवित्र होता है और वैर की भावना रहने से क्रोध उत्पन्न होता है वे सब वासना जब क्रोध का रूप ग्रहण कर लेता हैं तब उनको वाणी से प्रकाश करता है और

शत्रु के लिये दुष्ट वचन कहने लगता है वचन से फिर कर्म में आता है हाथ में हथियार लेकर मारने को उद्यत होता है इस प्रकार हिंसा करने से मनुष्य नीचता को प्राप्त होता है ऐसे वैर भाव करने वाला मनुष्य कभी ईश्वर भक्त नहीं हो सकता है इसलिये योग विद्या के विद्यार्थी को उचित है कि वह किसी से वैर भाव न रक्खे क्योंकि वैर से ही हिंसा की उत्पत्ती होती है। जब उपासक के मन में किसी प्राणी के प्रति वैर भाव उत्पन्न न होवे तभी समझ लेवे कि अब मैं ईश्वर की भक्ति का पात्र बन गया क्यों कि मेरे मन में अहिंसा की वृत्ति स्थिर होगई है योगी सदाचारी जनों से मित्रता तथा सत्संग करे, दीन दुखियाओं पर दया करे, पुण्यात्मा वेदोक्त कर्म करने वालों को देखकर हर्षित होवे, पापियों से सदा उपेक्षा अर्थात् न उनसे वैर और न प्रीति करे तब जान लेवे कि अब मेरे मन में अहिंसा धर्म की स्थिरता होगई।

योगी के लिये अहिंसा का पालन करना सार्वभौम महाव्रत है अर्थात् सारी पृथिवी पर, मानो चिंउंटी से लेकर हाथी पर्य्यंत किसी जीव में उसका वैर नहीं किन्तु सब उसको कुटम्ब की तरह परम प्रिय हैं। तब जानो कि योग की प्रथम सीढ़ी पर पैर रक्खा है।

चढ़े तो चाखे प्रेम रस गिरे तो चकना चूर

यदि योग का उपासक इस अहिंसा रूपी पहिली सीढ़ी पर सावधानी से चढ़ गया तो आगे की चार सीढ़ी (१ सत्य,

२ अस्तेय, ३ ब्रह्मचर्य्य, ४ अपरिग्रह) भी सुगमता से तय कर सकेगा और निश्चय ही ब्रह्मानन्द रूपी अमृत रस का पान करेगा यदि इस से गिर गया तो वस मनुष्य जन्म ही चकना चूर होगया मनुष्यके अन्दर अन्याय से स्वार्थकी सिद्धी करनेका जब विचार स्थिर होजाता है तब इसी ख़याल से हिंसा की उत्पत्ती हो जाती है मानलो कि मनुष्य अपने मांस और रुधिर को पशु पक्षियों को खाकर बढ़ाना चाहता है इसी ख़याल से उसके मन में वैर उत्पंन्न होगया परन्तु पशु पक्षियों को मारे किस वहाने से इसलिये वहाना तैयार किया कि जो कोई ईश्वर के लिये अथवा किसी देवता वा पितर के लिये अमुक२ पशु वा पक्षीकी बलिदान करेगा उसको स्वर्ग मिलेगा और वह पशुपक्षी भी स्वर्ग को चला जावेगा यह देखो स्वार्थ से वैर और वैर से हिंसा की उत्पत्ति होगई जब किसी समय पर कोई पशु पक्षी न मिला तो दूसरे मनुष्यों का चुराकर ही कार्य्य साधन किय तो स्तेय यानी चोरी की उत्पत्ति होगई इस से भोगों की तृष्णा बढ़ी तृष्णा से भोगों का संचय करना बढ़ा बस एक अहिंसा की सीढ़ी छोड़ देने से चारों सीढ़ियाँ हाथसे गईं इसलिये योग के जिज्ञासु को अहिंसा धर्म का साधन जो कि प्रथम सीढ़ी है बड़े यत्नसे करना चाहिये इसका साधन करलिया तो समझलो कि रास्ता सुगम और साफ़ होगया।

दूसरा यम सत्य।

जब मनुष्य के मनमें अहिंसा अर्थात् सम्पूर्ण प्राणी मात्र के साथ निर्वैरिता स्थिर हो गई तो सत्य के लिये द्वार खुल गया

अब वह किस के लिये झूंठ बोले। अतः मन वाणी और कर्म में सत्य की धारणा करे क्योंकि(सत्येन पन्था वितते देवयानः) सत्य से ही ज्ञान का मार्ग खुलता है और मोक्षकी प्राप्ति होती है ईश्वर सत्य स्वरूप है अतः सत्यवादी को ही मिलता है झूंठ को नहीं।

जैसा आत्मा में सत्य है वैसा ही मन में विचारे क्यों कि आत्मा से विरुद्ध विचारेगा तो झूंठ होगा जैसा मन में सत्य का विचार है वैसा ही वाणी से बोले यदि मानसिक विचार से विरुद्ध कहेगा तो झूंठा ठहरेगा, जैसे वाणी से वचन कहा है वैसा ही कर्म में लावे अर्थात् उसी वचन के अनुकूल आचरण करे तभी सत्यवादी होगा यदि आत्मा में और मन में उसके विरुद्ध पुनः मनके विषय वाणी में और वाणी के विरुद्ध कर्म में है तो ऐसे झूंठ के लिये तो नर्क का ही दरवाज़ा खुलेगा।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्। यो० सू०

जब मनुष्य के आत्मा और मन वाणी कर्म में सत्य की दृढ़ स्थिरता होजाती है तो उस योगके जिज्ञासु की सम्पूर्ण क्रियाएं सफल होती हैं किया हुआ तप कोई भी निष्फल नहीं होताहै।

३—यम अस्तेय

अस्तेय का अर्थ चोरी न करना है जब मनुष्य के आत्मा में अहिंसा और सत्य की धारणा है तो चोरी नहीं कर सकता क्योंकि कोई चोर किसी की चोरी करके प्रत्यक्ष में किसी से

यह नहीं कहता है कि मैं चोर हूं यदि ऐसा कहे तो दण्डनीय होजावे इस लिये यदि सत्यवादी चोरी करेगा तो सत्य का त्याग करना होगा जब सत्य को त्यागेगा और चोरी करेगा तो जिसकी चोरी करेगा उसको दुःख होगा इससे अहिंसा भी उसके आत्मा में न रहेगी इसलिये जिसके अन्दर अहिंसा और सत्य की धारणा है उसी के अन्दर अस्तेय अर्थात् चोरी भी नहीं रह सकती है अतः चोरी का त्याग अर्थात् अपनी वस्तु परही अपना अधिकार रक्खे पराई वस्तु को अपनी कभी न कहे।

४—यम ब्रह्मचर्य्य ।

ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः । योग सूत्र

जिस मनुष्य में ब्रह्मचर्य्य की स्थिति हो जाती है वह वीर्य्यवान् तेजस्वी तीव्रबुद्धी महापराक्रमी धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों फलों के प्राप्त करने में उत्साह पूर्वक सफल होता है।

(ब्रह्मचर्य्येण देवा मृत्यु मपाघ्नत अथर्व वेद) ब्रह्मचर्य्य के बल से विद्वानों ने मृत्यु को जीत कर मोक्ष पाई इसलिये इस संसार में जितनी सिद्धियाँ हैं वे सब जितेन्द्री वीर्य्यवान् को मिलती हैं नपुंसक विषयी कामी दुराचारी मनुष्यों को कभी कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हुई न होती है न होगी इस वास्ते ईश्वर भक्त योगी को ईश्वर प्राप्ति करने के लिये चौथा साधन ब्रह्मचर्य्य का साधन है इस के दृढ़ साधन से उसके मनको कोई भी कामना योग मार्ग से गिरा नहीं सकती है।

५—यम अपरिग्रह

अपरिग्रह अर्थात् तृष्णा का त्याग। योगी पुरुष की किसी वस्तु में ममता अर्थात् यह चीज़ मेरी है ऐसी वासना न हो। क्योंकि भोगों के लिये अनेक २ पदार्थों को संचय करना यह गृहस्थ का धर्म है ईश्वर को साक्षात् करने का साधन करने वाले को यह विघ्नकारक है। जैसे एक ब्राह्मण घर त्याग कर के तपस्या करने को तपोवन में गया जब वह तप करने लगा तो उसके मन में भोजन करने की इच्छा उत्पन्न हुई तो वहाँ के तपस्वियों से पूछा कि महाराज क्षुधा लगी है यहाँ पर खाने का साधन क्या है तपस्वियों ने उसको वन के कंद मूल फल खावाँ के चावल बतादिये वह उनको भोजन करने लगा परन्तु उस का मन संतुष्ट न हुआ यह वासना इतनी प्रबल हो गई कि उसका मन घर के स्वादिष्ट भोजनों को स्मरण करते २ तपस्या में विघ्न डालने लगा इस तृष्णा ने उस ब्राह्मण को इतना तंग किया कि वह तपस्या छोड़ कर घर को जाने लगा

तब उन तपस्वियों ने पूछा कि हे ब्राह्मण आप तो तप करने आये थे अब कहाँ जाते हो ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि महाराज मेरा मन इन वन के भोजनों से सन्तुष्ट नहीं होता इस कारण से यह तपस्या में विघ्न डालता है इस लिये घर को जाता हूँ दयालु तपस्वियों ने कहा कि अच्छा आज और ठहरो कल चले जाना उस दिन तपस्वियों ने उस को एक फल खाने को दिया वह अनेक रसों से युक्त था और अतीव स्वादिष्ट परन्तु

उसमें एक ऐसी शक्ति थी कि वह कई दिन तक क्षुधा नहीं लगने देता था ब्राह्मण उसको खाकर बहुत प्रसन्न हुआ दूसरे दिन तपस्वियों ने वही फल फिर ब्राह्मण को दिया उसने कहा कि महाराज मन तो खाने को चाहता है परन्तु उदर भरा हुआ है कैसे खाऊं। तब फिर तपस्वियों ने पूछा कि अच्छा पेट भरने पर भी मन क्यों चाहता है तो ब्राह्मण ने कहा कि महाराज मन को इसके स्वाद का स्मरण आरहा है इस लिये चाहता है

तपस्वी–अच्छा तो तुम मनका कहना क्यों नहीं मानते ब्राह्मण महाराज अब जो मन का कहना मानूं तो बड़ा दुःख भोगूंगा क्योंकि पेट तो ठसाठस भर रहा है वह भोजन चाहता नहीं यदि मनका कहना मानूं तो मरना पड़ेगा।

तपस्वी–हे ब्राह्मण जिस मनके कहने से स्वाद की तृष्णा के वशीभूत होकर तुम तपको छोड़कर घरको जातेथे वही मन तुम्हारा ऐसा शत्रुहै कितुम्हारे मरने का उसको कुछभी ध्यान नहीं भले ही मर जाओ पर वह अपना स्वाद चाहता है इसलिये अब तुम इस शत्रुकी गुलामी से अपने को छुड़ाकर विवेक की शरण गहो और इसको वश में करो॥ हे ब्राह्मण जैसे एक स्वाद के वशीभूत हुआ मन तुम्हारी मृत्यु की परवाह नहीं करता इस तरह से पांच ज्ञान-इन्द्रियाँ और पाँच कर्मइन्द्रियों के जो २ दस प्रकार के विषय हैं इन्हीं में इस जीवात्मा को फंसा कर यह मन इस तरह से तड़पा २ कर घोर दुःखी करता है जिस तरह से थोड़े जल में मछली तड़प २ कर प्राण छोड़ती है इस लिये हे विप्र इस पापिन विषय तृष्णा से मन को हटा कर ध्यान योग मे

लगादो जिससे कि तुमसे शत्रुता छोड़कर मित्र बन जावे और तुम्हारी आत्मा अपने प्यारे पिता परमात्मा की गोद में पहुंच कर सब दुःखों से छूट जावे इस उपदेश का उस ब्राह्मण पर ऐसा असर पड़ा कि उसने मन को वशमें करके उस अपरिग्रह अर्थात् तृष्णा का त्याग किया।

प्र०—अपरिग्रह अर्थात् ममता वा तृष्णा के त्याग का क्या फल होता है॥

उत्तर—जब मनुष्य ममता का त्याग कर देता है तब उस को सिवाय परमात्मा के और किसी पदार्थमें चित्त नहीं जाता जब एक ईश्वर ही के विवेक और ध्यान में चित्त रमण करने लगता है तब इसको पूर्वजन्मों के सब चरित्रों का ज्ञान हो जाता है जन्म मरण के प्रवाह और उन में जो २ दुःख होते हैं उनका ज्ञान होजाने पर इस को इस प्रवाह से घृणा होने पर एक ईश्वर ही में सब दुःखों से छूट जाने का दृढ़ विश्वास हो जाता है।

इति पंचम यम करण समाप्तम्॥

पांच नियम

शौच संतोष तपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमाः।योगसूत्र

नियम भी पाँच प्रकार के हैं १ शौच २ सन्तोष ३ तप ४ स्वाध्याय ५ ईश्वर प्रणिधान॥

पाठकों को यह स्मरण रहना चाहिये कि जब तक उपासक पूर्वोक्त ५ यमों की धारणा अपने मन आत्मा और इन्द्रियों में न कर लेगा तब तक उन के बिना नियमों का करना निष्फल होगा । क्योंकि हिंसक, झूंठा, चोर, कामी, तृष्णा ग्रसित मनुष्य को बिना यमों के नियम अर्थात् शौच सन्तोषादि कुछ भी फल नहीं दे सकते फल देना तो दूर रहा वल्कि हिंसा आदि दोषों से दूषित मनुष्य में ये पाँच नियम ठहरते ही नहीं ॥

१—शौच

शौच माने पवित्रता करने के हैं पवित्रता दो प्रकार की है १ बाह्य अर्थात् बाहिरी और आभ्यन्तरी अर्थात् अन्दर की ।

दोघड़ी रात्रि रहने पर नगरके बाहर किसी बगीचा कूप वा नदी के समीप जाकर मलमूत्र त्यागके पश्चात् शुद्ध पीली मिट्टी से तीन वार गुदा को मंजन कर जल से धोवे और एक वार मूत्र इन्द्रि से मिट्टी लगाकर धोवे फिर जल के समीप आकर वाम हाथ को दशवार मिट्टी लगाकर धोवे फिर दोनों हाथों को ७ वार मिट्टी लगाकर धोना चाहिये पात्र को तीन वार मंजन करके दन्त धावनकर स्नान करे इसका नाम बाह्य शुद्धीहै

२—आभ्यन्तर शुद्धि

मनकी शुद्धी सत्यकी धारणा से और आत्मा की शुद्धि ब्रह्म विद्या और तप करनेसे और बुद्धिकी शुद्धी विवेक से होती है ।

शौच का फल

अब उपासक में पवित्रता करते२ इस शरीर के उत्पत्ति कारण पर विचार उत्पन्न होता है तब इस उपासक के विचार में अपने शरीर से घृणा उत्पन्न हो जाती है इसी प्रकार अन्यों के शरीरों से भी। इस प्रकार शौच का अभ्यास करते २ बुद्धि शुद्ध और मन प्रसन्न और एकाग्र हो जाता है इन्द्रियाँ चंचलता को छोड़ देती हैं तब उस उपासक में आत्म दर्शन की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

यह नियमों का प्रथम अंग समाप्त हुआ

२—नियम संतोष

संतोषादनुत्तम सुखलाभः। पा० यो० सूत्र ४२ पाद २

सन्तोष से वह सुख प्राप्त होता है जिससे बढ़कर इस लोकमें कोई दूसरा सुख नहीं। इस पर महर्षिव्यास जी कहते हैं

यच्चकाम सुखंलोके यच्चदिव्य महत्सुखं।
तृष्णा सुख क्षयस्यैते नहितः षोड़शीकलाम् ॥१॥

व्यास भाष्य जो इस संसार में भोग्य सुख हैं और जो बड़े दिव्य सुख हैं ये सब सुख तृष्णा के नाश होने पर संतोष से उत्पन्न जो सुख है इसके सोलहवें हिस्सा की बराबर भी नहीं होते। एक अन्य कविने भी कहा है—

दो०—गोधन गज धन वाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवत संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥ १ ॥

यह निश्चय जानों कि जब तक मनुष्य साँसारिक भोगों की तृष्णा में फंसा रहता है तभी तक इसके मन और इन्द्रियों में अशान्ति और विकलता रहती है बल्कि मरते समय सब कलेवर जीर्ण हो रहा है परंतु उस समय भी तृष्णा ही एक पूरी जवानी में भरी हुई है इसी लिये वेद ने मनुष्य जाति के उद्धार के लिये चार आश्रमों का विधान किया है जिन में से चतुर्थाश्रम में संन्यास ग्रहण करके पुत्रों को सब अधिकार दे कर लोकैषणा पुत्रैषणा धनैषणा तीनों ऐषणाओं से मनको हटा कर ममता तृष्णा से विरक्त होकर संतोष को धारणा कर के योग में प्रवेश करे।

३—नियम तप

कायेन्द्रिय सिद्धिर शुद्धिक्षयात्तपसः पा०यो०सू०पाद२सू०४३

जब योग का उपासक चान्द्रायणादि व्रतों का अनुष्ठान करता है तो उस क्लेश सहनरूपी तप से काया और इन्द्रियों के मलों का नाश हो जाता है मलों के नाश हो जाने से अणिमादि ८ सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं उनके सिद्ध होने पर दूर तक दीखना दूर का श्रवण कर लेना आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। चान्द्रायण आदि व्रतों का साधन मनुस्मृति अध्याय ११ में वर्णन किये हैं परंतु ऐसा कठिन तप उन्हीं साधकों के लिये हैं जिन की इन्द्रियाँ गृहस्थाश्रम के भोगों में आसक्त होने से

वश में नहीं आती हैं परन्तु जो स्त्री पुरुष वेदानुकूल गृहस्थ ही धर्म में रहे हों केवल संतानार्थ ही जिन्होंने वीर्य्य दान किया हो और गृहस्थ में नियम पूर्वक पंचयज्ञ करते रहे हों ऐसे शुद्ध इन्द्रिय मन वालों को उक्त वृतों की आवश्यक्ता नहीं।

४—नियम स्वाध्याय

स्वाध्याया दिष्ट देवता संप्रयोगः ।

योग का चौथा अंग स्वाध्याय है योगी को उचित है कि दो घंटा रात्रि रहने पर उठकर शौच दन्त धावन स्नान से शरीर शुद्धि करके आसन पर बैठकर एकान्त में प्राणायाम और अर्थ सहित प्रणव (ओं) का जप करे पुनः..सूर्योदय,होने पर वेद और उपनिषद् तथा वेदान्त दर्शन और पातञ्जल योगदर्शन का स्वाध्याय करता रहे। भोजन के समय को छोड़ कर और जितना समय है दिन भर स्वाध्याय में मन को रमण कराता रहे क्योंकि–(वेदाभ्यासोहि विप्रस्य तपः परमिहो च्यते मनुः) विद्वान के लिये नित्य ही वेद पाठ करना महा तप है उस स्वाध्याय से योगी को जो बड़ी उत्कटइच्छा ईश्वर प्राप्ति की है उसकी सहायता के लिये बड़े२ सिद्ध योगी और दिव्य शक्तियों की प्राप्ति होती है और सूर्य्य चन्द्रादि सब देवता भी अनु-गामी हो कर सुख देते हैं। इस लिये योगी का अवश्य कर्त्तव्य है कि स्वाध्याय से बाहर मन को न जाने देवे इस प्रकार स्वाध्याय से योग सिद्धि और योग सिद्धि से स्वाध्याय में

अत्यन्त प्रेम बढ़ जाने से मन को फिर साँसारिक भोग विष तुल्य प्रतीत होने लगते हैं ऐसी दशा होने पर वह मन जीवात्मा को बड़े उत्साह के साथ परमात्मा की भक्ति में लगा देता है और योग में विघ्न करने वाले काम क्रोधादि शत्रुओं को कुचल कर बाहर फेंक देता है इस लिये साँय प्रातः दोनों संधियों में प्रणव का जप प्राणायाम उपासना दो २ घंटा करे और दिन भर वेदादि मुक्ति विषयक शास्त्रों का अध्ययन करता रहे इस तरह पर तन मन से आत्म समर्पण करने वाले योगी को शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है।

५—नियम—ईश्वर प्रणिधान

समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात् ४५ यो० अ०२ सू ४५

जो मनुष्य शारीरिक मानसिक वाचिक सब क्रियाओं को ईश्वर के अर्पण कर भक्ति रस में तन्मय होजाता है उस ईश्वर की भक्ति से ईश्वर उसपर प्रसन्न होकर उसके सारे क्लेशों को दूर कर देता है और उस भक्त को समाधि सिद्धि होकर कालान्तर देशान्तर देहन्तर में स्थित सब पदार्थों का दिव्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

यह पाँच नियमों की व्याख्या समाप्त हुई अर्थात् योग के दो अंग अर्थात् ५यम और पाँच नियमों का व्याख्यान हो चुका अब योग के ३ अंग आसन का वर्णन करेंगे

३ अङ्ग आसन

तत्र स्थिर सुख मासनम् ॥ यो० अ० २सू ०४६॥

योग साधन में जिस आसन (बैठक) से सुख हो अर्थात् जिसमें शरीर के सब अंग स्थिर रहसकें कोई अंग पीड़ित और कंपित न हो सके जब से उपासना में बैठना प्रारम्भ करें अन्त तक वही आसन ठीक लगा रहे बीच में बदलना न पड़े ऐसा एक दृढ़ आसन लगावे। आसन कई प्रकार के होते हैं जैसे १ पद्मासन २ वीरासन ३ भद्रासन ४ स्वस्तिक ५ दंडासन ६ सोपाश्रय ७ पर्य्यंक ८ क्रौंचनिषीदन ९ हस्तिनिषीदन १० समस्त स्थान इन में से जिस में सुख पूर्वक बैठ सके उसी आसन से बैठे परन्तु प्रथम कुशासन उस के ऊपर ऊर्णासन उसके ऊपर वस्त्र बिछाकर आसन लगाना चाहिये।

प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

क्योंकि जब योगी आसन लगाने के पश्चात् ध्यान योग में लोलीन हो जाता है तब उसको आसन का ख्याल नहीं रहता यदि आसन दृढ़ होगा तो ध्यान योग में कोई शरीर कंपन आदि का विघ्न न होगा।

४—प्राणायाम्

तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

यो०अ०२ प०६,४९

आसन की स्थिरता में ही शीत, उष्ण, भूख, प्यास आदि द्वंद्ध दोषों का नाश होता है दोषों के नाश होनेपर ही आसन के आश्रय से प्राणायाम योगाङ्ग का अनुष्ठान करना चाहिये। प्राणायाम का लक्षण यह है कि बाहर से जो वायु को अन्दर

लिया जाता है वह श्वास और जो अन्दर से वायु को बाहर छोड़ा जाता है उसको प्रश्वास कहते हैं। अब प्राणायाम का लक्षण यह है कि श्वास और प्रश्वास दोनों की गतियों को रोकने का अभ्यास करना प्राणायाम कहाता है।

उसके रोकने की तीन विधि हैं १ यह कि शरीर के अन्दर की वायु को खींचकर बाहर निकालना इसको रेचक कहते हैं २ यह कि बाहर निकले हुए वायु को देर तक बाहर ही रोकने का अभ्यास करना इसको स्तम्भन प्राणायाम और ३ यह कि फिर स्तम्भन क्रिया के बाद स्वच्छ वायुको खींचकर अन्दर ही धारण करके रोकने का अभ्यास करना इसको पूरक प्राणायाम कहते हैं इस प्रकार बाहर और भीतर आने जाने वाले श्वास और प्रश्वासों की गति को तीन प्रकार से रोकने के अभ्यास को प्राणायाम समझो अब सुगमता से समझाने के लिये महर्षि पतंजलि प्राणायाम के अलग२ विभाग करके कहते हैं।

सतु वाह्याभ्यन्तर स्तम्भन वृत्ति देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः ॥ पा० २ सू० ४६

१—जहाँ प्रश्वास अर्थात् अन्दर से निकले हुए वायु की अन्दर लौटने की गति को रोकने का अभ्यास करता है वह वाह्य प्राणायाम है।

२—जिसमें श्वास अर्थात् अन्दर से बाहर को जाने वाले वायु की गति को अन्दर ही रोकने का अभ्यास करना है वह आभ्यन्तर प्राणायाम है।

३—जिसमें अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर का जाने वाले प्राणकी श्वास और प्रश्वास दोनों गतियों को (कच्छपवत्) कछुवा की तरह अर्थात् जैसे कछुआ एक बार ही में सम्पूर्ण शरीर झटित ही खोपड़ी के अन्दर खींच कर सुख पूर्वक स्थिर हो जाता है इसी प्रकार अन्दर और बाहर को जाने आने वाली गतियों को रोककर प्राण को हृदय देश में स्थिर करके ईश्वर के ध्यान में लवलीन हो जाना स्तम्भन प्राणायाम तीसरा है। यह तीन प्रकार का प्राणायाम देश काल और संख्या के भेदों से दीर्घ प्राणायाम और सूक्ष्म प्राणायाम नाम से दो२ प्रकार का हो जाता है।

फिर देशो पलक्षित १ कालोपलक्षित २ और संख्या परिदृष्ट ३ इन तीन विधियों को प्रत्येक प्राणायामके साथ लगाना उसकी विधि यह है कि नाभि चक्र, हृदय मूर्द्धा, त्रिकुटी आदि स्थानों में से किसी एक स्थान में चित्त को एकाग्र कर के प्राणायाम करना इसको देशोपलक्षित कहते हैं। १। उक्त स्थानों में नित्यं प्रति प्राणायाम में श्वास के ठहरने की अवधि को बढ़ाते रहना कालोपलक्षित कहाता है २। प्राणायामों के करने में संख्या का नियम करना कि इतने प्राणायाम करूंगा इसको संख्या परिदृष्ट कहते हैं पूर्वोक्त प्राणायामों के करने में ३गतियों का भी अभ्यास क्रमशः करना उचित है अर्थात् मृदु १ तीव्र२ मध्य ३ इनका क्रम यह है कि कल्पना करो कि प्रथम प्राणायाम में १ मिनट ठहरने का अभ्यास है तो उसको २ मिनट पर पहुंचना यह दूसरा प्राणायाम पहिले की अपेक्षा तीव्र हुआ और

पहिला मृदु होगया पुनः दो मिनट वाले को तीन मिनट पर पहुंचाया तो यह तीव्र हो गया दो मिनट वाला मध्यम होगा और पहिला मृदु इस क्रम से मृदु का तीव्र और तीव्र का मध्य और मध्य का फिर तीव्र करते २ चतुर्थ प्राणायाम तक पहुंच कर सारी विधियाँ पूर्ण होकर परम सिद्धि प्राप्त होवेंगी और आत्मा की सब दिव्य शक्तियाँ जाग उठेंगी अब चतुर्थ प्राणायाम की विधि का वर्णन करते हैं।

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५० ॥

पूर्वोक्त प्राणायामों में जो बाह्य वृत्ति और आभ्यन्तर वृत्तियों में प्राण का निग्रह कहा है उनकी दोनों गतियों का अभाव करके जो हृदय देश अथवा नाभि चक्र में प्राण को निग्रह कर तुरंत ही कच्छपवत् ध्यानावस्थित हो जाता है। इसको चतुर्थ प्राणायाम कहा है इस चौथे प्राणायम और स्तम्भनवृत्ति प्राणायाम में इतना भेद है कि स्तम्भन प्राणायाम में तो बाह्य और आभ्यन्तर गतियों और दीर्घ सूक्ष्म का कुछ क्रम रहता है परन्तु इस चौथे प्राणायाम में उनकी सारी भूमियों को जीतकर निश्चिन्त ध्येय में स्थित होजाता है, यही इस में विशेषता है।

ततः क्षीयते प्रकाशा वरणम् ॥ ५१ ॥

इस चतुर्थ प्राणायाम के अभ्यास से योगी के आत्मा पर जो विवेक को ढकने वाला आवरण (परदा) है जो कि जीवात्मा को अकर्त्तव्य कर्म में फंसाये रखता है और जो महा मोह

इन्द्रजाल की तरह फैला हुआ है वह बिलकुल नाश हो जाता है जैसा कि धर्म शास्त्र में कहा है। (तपो न परं प्राणायामात्। ततो विशुद्धिर्मलादीनाँ दीप्तिश्च ज्ञान स्येति) प्राणायाम से उत्तम कोई तप नहीं।

योग का पांचवां अङ्ग प्रत्याहार।

स्वविषया सम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार-
इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५२ ॥

जब चित्त बाहर के विषयों के चिन्तन से अलग होकर ईश्वर के गुणों में लग जाता है तब इन्द्रियाँ भी चञ्चलता को त्याग देती हैं जैसे मक्खियों का राजा मधुकर के उड़ान भरने पर साथ ही में मक्खियाँ भी उड़जाती हैं और मधुकर (भौंरा) राजा छत्ते रूप म ल में जाकर बैठ जाता है तो मक्खियाँ भी शान्त होकर बैठ जाती हैं इसी प्रकार इन्द्रियों का राजा जो चित्त है वह जब विषयों की तरफ़ दौड़ता है तो इन्द्रियाँ भी उसकी आज्ञानुसार दौड़ कर विषयों की वासना उसको देती हैं और जब चित्त वैराग्यवान होकर विषयों को त्याग कर अपने स्वरूप में एकाग्र होकर स्थिर हो जाता है तो इन्द्रियाँ भी शाँत होकर चंचलता त्याग देती हैं, और चित्त को योगाभ्यास में सहायता देती हैं।

क्यों कि उस से मल विक्षेप आवरण का नाश और ज्ञान प्रदीप्त होता है।

किंच धारणा सुच योग्यता मनसः ॥ ५२

योग का छटा अंग जो धारणा आगे कहा जायगा उस में

प्राणायाम रूप तप से ही मन की शक्ति ऐसी दिव्य हो जाती है कि जिस से वह धारणा में प्रवेश करता है क्यों कि जब प्राणायाम से मलविक्षेप आवरण का नाश होकर मन पवित्र हो जाता है तभी वह इस योग्य होता है कि योगी उस को जहाँ लगावें वहीं लग जाता है फिर साँसारिक भोग . विषयों की तरफ़ बिलकुल नहीं जाता ॥

इति प्राणायामः

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५४ ॥

शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन पाँच विषयों से पाँच ज्ञान इन्द्रियों का विरक्त होना ही इन्द्रिय जय है ऐसा कोई मुनि कहते हैं। कोई मुनि ऐसा कहते हैं कि शब्दादि विषय इन्द्रियों का स्वाभाविक धर्म है अतः इन्द्रियों की विषय शक्ति का जो (व्यसन) आदत है उस को प्रत्याहार नष्ट करके इन्द्रियों को कल्याण मार्ग में लगाता है। अन्य कोई मुनि ऐसा मानते हैं कि रागद्वेष का अभाव होने पर इन्द्रियों का विषयों से प्राप्त सुख दुःख का शून्य होना ही इन्द्रिय जय है परन्तु जैगीषव्य ऋषि का मत यह है कि चित्त की एकाग्रता से ही इन्द्रियों के शब्दादि बाह्य विषय छूट जाने पर इन्द्रियाँ फिर उन विषयों की तरफ़ नहीं जाती क्योंकि बिना चित्त की प्रेरणा के इन्द्रियां विषय में प्रवृत्त होती नहीं इस लिये जब चित्त एकाग्र हो जाता है फिर विषयों की तरफ रुख नहीं करता तो इन्द्रियाँ भी उपरत

होकर योगी के अत्यन्त वश में हो जाती हैं॥ अतः प्रत्याहार से इतर चित्त ही इन्द्रियों को अत्यन्त वश करने में कारण है॥५४

इति प्रथमो ध्यायः

योग का छटा अंग धारणा॥६॥

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा॥ १ ॥

देश अर्थात् नाभिचक्र, हृदय कमल मूर्द्धा कपाल, दोनों भ्रकुटियों के मध्य, नासाग्र, जिह्वाग्र, इन उक्त स्थानों में से किसी एक स्थान में चित्त को ठहराकर और विषयों को त्याग कर ईश्वर के गुणों में जो चित्त को रमण कराना है वह धारणा कहाती है।

मतलब यह है कि जिस योगी के चित्तमें ईश्वर से मित्रता वा प्रेम पूरित हो गया है। पाँच नियम पाँच यम जिसने धारण किये हैं। आसन को जिसने जीता है। जिस के चित्त से पाप की वासना दूर होगई हैं। प्राण जिसके वश में हो गये हैं। इन्द्रियाँ जिसने जीत ली हैं। एकान्त शुद्ध जलवायु उपवन स्थान में योग स्वाध्याय से जिस के सुख दुख जाड़ा गरमी आदि द्वंद्व दोष दूर हो गये हैं वह योगी योग के अगिले अंग ध्यान के साधन के लिये धारणा से चित्त को एकाग्र करे।

मेस्मरिज़्म के जानने वाले लोग बाहर की वस्तु किसी काले विन्दु आदि पर नज़र ठहरा कर चित्त के एकाग्र करने का यत्न करते हैं और अन्त में विद्युत शक्ति को सिद्ध कर के

कुछ चमत्कार दिखाते हैं परन्तु अन्त में चित्त व इन्द्रिय शक्तियों का नाश कर दुखी होते हैं क्योंकि जड़ वस्तुओं की शक्तियों में ध्यान करने से चेतन जीवात्मा को सुख नहीं मिलता है किन्तु शारीरिक सुख है इसी को तो लालसा जीवात्मा को बार २ जन्म मरण के बन्धन में डालती है इसलिये जब तक चेतन जीवात्मा महा चैतन्य सर्व व्यापक सर्वदा आनन्द स्वरूप परमात्मा के गुणों को धारण या अनुभव कर ध्यान नहीं करता तब तक इसको परम आनन्द की प्राप्ति नहीं होसकती है।

योग का सप्तम अङ्ग ध्यान।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

उन नाभिचक्र वा हृदय कमल आदि स्थानों में (ध्येय) जो ध्यान करने योग्य ईश्वर है उसके ज्ञानमें लय होजाना ध्यान कहाता है अर्थात् ईश्वर के ज्ञान में ऐसा लीन हो जावे कि उस समय सांसारिक किसी वस्तु के ज्ञान की तरफ़ जाने की कोई भी वासना उत्पन्न न होने पावे तब समझो कि योग का अङ्ग ध्यान ठीक २ हो रहा है। उपनिषद् में कहा है—

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्य मुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्॥ मुण्डक॥

योगाभ्यासी को ध्यान करते समय उचित है कि अपने मन को आलस्य और बाहर के विषयोंसे हटाकर ओंकारको कमान बनाकर जीवात्मा रूपी तीर को ब्रह्म में लगावे अब तीरके लिये निशाना चाहिये तो कहते हैं कि ब्रह्मको निशाना बनावे,परन्तु

याद रहे कि तीर निशाने में कैसे लग सकता है जब तक कि मन वशमें न हो क्योंकि मन चंचल है यदि वह एकाग्र न होगा तो तीर ठीक निशाने में हर्गिज़ नहीं लग सकता। इसलिये मन को एकाग्र करे जब ब्रह्म रूपी निशाने में आत्मा रूपी तीर प्रवेश करेगा इस लिये पिछले धारणा अंगमें मनकी एकाग्रता साधननिश्चित होने पर ही ध्यान का वर्णन किया गया है। पूर्वकालमें जबकि द्रोणाचार्य्य जी अपने शिष्य कौरव पाँडवों को पढ़ाते थे तब एक समय उन्होंने अपने शिष्यों की निशाने की वेध परीक्षा लेने लगे और एक वृक्षकी चोटी पर एक पक्षी का चित्र रक्खा गया और सब शिष्यों में से क्रमशः एक २ शिष्य को आज्ञा दी कि इस पक्षी की आँख में तीर लगाना चाहिये परन्तु तीर जब छोड़ा जावे जिस वक्त मैं आज्ञा दे दूं, आज्ञा पाने पर प्रत्येक शिष्य आया निशाने पर दृष्टि बांधी तब गुरू जी ने पूछा कि बताओ तुम को क्या दीखता है तब किसी ने कहा कि पक्षी भी दीखता है और उसकी आँख भी दीखती है किसीने कहा कि मुझे वृक्षकी डालीपर पक्षी दीखता है किसी ने कहा कि नेत्र और डाली दीखती है इस तरह से सब शिष्य वेध विद्यामें फेल हुए और एक २ की परीक्षा लेकर सब हटा दिये सब के अन्त में धनुर्द्धर अर्जुन की पारी आई उसने कमान पर तीर चढ़ा कर शिस्त लगाई जब गुरू जी ने पूछा कि बताओ पुत्र तुमको क्या नज़र आता है तब अर्जुन ने उत्तर दिया कि गुरुजी मुझ को सिवाय आँख के और कुछ भी नहीं नज़र आता है गुरूजी ने तत्काल आज्ञा दी कि छोड़

है तीर आज्ञा पाते ही अर्जुन ने तीर छोड़ा कि ठीक आँख में जा लगा इसी प्रकार जब उपासक का मन (ओम्) जप में और उस के अर्थ ब्रह्म के स्वरूप में तन्मय हो जाता है और बाहर के विषयों का किंचित मात्र भी चिन्तन नहीं रहता तो इस प्रकार के ध्यान करने से जीवात्मा झटितही तीर की नाईं ब्रह्मस्वरूप में प्रवेश कर जाता है।

योग का ८ अङ्ग समाधि

तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्य मिव समाधिः ३

जिसमें ध्यान का संस्कार मात्र रहजावे और अपने स्वरूप को भूले हुए के समान हो जावे उसको समाधि कहते हैं।

इसका मतलब इस तरह समझना चाहिये कि ध्यान करते में तीन वस्तुओं का स्मरण रहता है अर्थात् १ ध्यान करने वाला २ जिसका ध्यान करता है ३ जिस(ओम्) शब्द से ध्यान करना है परन्तु समाधि और ध्यान में भेद क्या है इसका उत्तर यह है कि समाधि में उक्त तीनों का स्मरण नहीं होता।

प्र०—तो फिर समाधि का क्या स्वरूप है।

उत्तर—जिसमें केवल एकाग्र शान्त स्वरूप अवस्था का साक्षात्कार हो उसका नाम समाधि है इसी को सम्प्रज्ञात योग कहते हैं।

इति अष्टांग योग व्याख्या समाप्तः

त्रयमेकत्र संयमः ३ । ४

ध्यान धारणा समाधि इन तीनों की एकता को संयम कहते हैं

एक ही परमात्मा रूपी ध्येय विषयमें ध्यान धारणा समाधि का करना सँयम कहाता है । अर्थात् केवल एक ईश्वर ही के ध्यान में योगी का आत्मा जब स्थिर हो जाता है तब उस अवस्था में जिस शब्द से ध्यान करता था वह और धारणा करांने वाले चित्तका तथा शाँत अवस्था वाली समाधि वाली समाधि का इन तीनों का ख़याल छूट कर केवल ईश्वर के स्वरूप में अनुभव का रहना संयम है।

तज्जयात् प्रज्ञालोकः ३ । ५

उस संयम की विजय में बुद्धि का प्रकाश होता है अर्थात् इस संयम अवस्था में जैसे २ योगी अभ्यास बढ़ाता आता हैं वैसे २ ही ईश्वर की कृपा से ब्रह्म साक्षात्कार कराने वाली बुद्धि निर्मल हो जाती है और जो २ पदार्थ बुद्धि द्वारा जानना चाहता-है उन २ का प्रकाश होता जाता है।

अब इस संयम से प्राप्त होने वाले लाभ का वर्णन करते हैं

उस संयम को क्रमशः योग की समाधियों में विनियोग करना चाहिये ।

योग की ७ समाधि साधन पाद में कही गई हैं । अर्थात् वितर्कानुगत १ विचारानुगत २ आनन्दानुगत ३ अस्मितानुगत ४ विराम ५ प्रत्यय ६ अभ्यास ७ योग भी दो प्रकार का है सप्रज्ञात १ असंप्रज्ञात २ पहली ४ समाधि संप्रज्ञात योग की हैं और दूसरी तीन असंप्रज्ञात योग की हैं।

स्थूल पदार्थों की रचना को देखकर सूक्ष्मता की तरफ़ पहुंचना जैसे स्थूल जगत के पदार्थों में कार्य्य कारण के सम्बन्ध से तर्क के सहारे से निश्चय करना कि स्थूल जगत् पञ्चभूत से बना है और पञ्चभूतों का कारण प्रकृति है इसको वितर्कानुगत कहते हैं।

२–विचारानुगत—यह विचार करना कि सब से सूक्ष्म जो प्रकृति है, उससे जगत् की रचना किसने की अर्थात् बारीक से भी बारीक पदार्थ का अनुभव करना और करतेर ईश्वर तक पहुंच कर विचार की समाप्ति होजाना कि बस इस से परे कोई सूक्ष्म नहीं है यही जगत् का कर्त्ता है।

३–आनन्दानुगत—ईश्वर की महिमा और उसके गुण कर्म स्वभाव का अनुभव करता हुआ जो आनन्दमें चित्तकारमण कराना है यह आनन्दानुगत योग कीतीसरी समाधि है।

४–अस्मितानुगत—अर्थात् अपने जीवात्म स्वरूप को प्रकृति और परमात्मा से पृथक् जानकर अपने निज स्वरूप में अनुभव करना यह चौथी अस्मिता समाधि है।

ये चार योग समाधियाँ सम्प्रज्ञात योगकी की कहलाती हैं अब तीन भूमि असंप्रज्ञात योग का वर्णन करते हैं।

१=विराम—अर्थात् जिसमें सब विषयों का विराम यानी समाप्ति होजावे किसी विषय का भी समाधि में स्मरण न होवे इसको विराम समाधि कहा है!

२–प्रत्यय—सिवाय ध्येय जो ईश्वर है उसके ज्ञान के

अतिरिक्त अन्य में ख़याल न जावे यह दूसरी समाधि है।

३-अभ्यास—उसी ध्येय के ध्यानमें नित्यप्रति नियमपूर्वक और उत्साह से आनन्द को बढ़ाने का अभ्यास करना इसतरह ये ७ प्रकार की समाधि योग की कही हैं।

योगाभ्यासी पुरुष इन सात समाधि में बड़े यत्न पूर्वक संयम का (विनियोग) अर्थात् क़ायमी करे।

प्रत्येक समाधि में अभ्यास करता हुआ संयम को मज़बूत करता जावे परन्तु योगीको बड़ी सावधानी से हरएक समाधि में बड़ी दृढ़ता से सिद्धि करनी चाहिये क्यों कि जिसने प्रथम समाधि सिद्ध न की होगी तो उस को अगली दूसरी भी सिद्ध नहीं होगी इस लिये पहिले नीची भूमी में अधिकार जमा के तब ऊपर की भूमि में दाख़िल होना चाहिये वर्ना योग की सिद्धि का फल प्राप्त नहीं हो सकेगा।

इसी लिये योगी महात्माओं ने योग के विद्यार्थियों को उपदेश किया है कि हे जिज्ञासु लोगों उठो जागो महात्मा योगी जनों के सत्संग को प्राप्त हो कर योगके रास्ते को अच्छी तरह संसार के भोगों से चित्त हटा कर समझो क्योंकि यह कठिन मार्ग पैने खाँड़े की धार है जैसे नट जिस समय तलवार की धार पर कला करने को तैयार होता है तो उस से प्रथम ढोल में बड़े जोर से डंका की चोट लगवाकर बजवाता है॥

क्यों बजवाता है इस लिये कि तमाशाई लोगों की बातों के शब्द उसके कान तक न आ सकें वे सब लोगों की आवाज़ें ढोल की आवाज़में लीन होजावें तब नट एकाग्र चित्तसे तलवार

की पैनी धार पर कला दिखाता है यदि उस समय किसी आदमी की बात की तरफ़ उस का दिल चला जावे तो दो टुकड़े उसके होजावें और इनामभी न मिले इसी प्रकार से ईश्वर की प्राप्ति के मार्ग योगाभ्यास में जबतक दुनियावी भोगविलासों की डाहिन वासना दख़ल देती रहेंगी तो योग सिद्धि कदापि न होगी कि ये डाहिन वासनाएं खींचकर इस को इसी जन्म मरण की बेलि में कस कर बाँध देवेंगी इसलिये हे उपासकों इस मार्ग को बड़ी शूरवीरतासे ही सिद्ध कर सक्ते हो दुनियाँ के सब एश आरामों से किनारा करना होगा क्यों कि यह कठिन पन्थ खाँड़े की धारा हैं विद्वानों ने इसका तय करना बड़ा मुशकिल बतलाया है परन्तु जो इस कठिनाई को पार कर लेता है वही सदा के लिये अमर होकर आनन्द का ही अनुभव करता है कहा भी है।

चढ़े तो चाखे अमृत रस। गिरे तो चकना चूर।

यह योग साधन के आठ अंगोंका वर्णन पूरा होचुका

प्र० क्या पातंजल ऋषिने आम आदमियोंके लिये इस अष्टाँग योग का उपदेश दिया है अथवा ख़ास २ मनुष्यों के लिये॥

और महर्षि पातञ्जलजीने कितने प्रकार के अधिकारी वर्णन किए हैं।

उत्तर तीन प्रकार के अधिकारी वर्णन किये हैं अर्थात् १ मृदु उपाय २ मध्य उपाय ३ तीव्र उपाय. इनमेंसे तीव्र उपाय

वाले को समाधि शीघ्र सिद्ध होती है॥ अर्थात् रात दिन जिस को योगसिद्धि ही में लौ लगी रहै ।

प्रश्न—भला इससेभी कोई अन्य उपाय सिद्धि का है।

उत्तर-ईश्वरमें दृढ़ भक्ति जिसकीहो और जगत्के भोगोंसे पूर्व संस्कार वशात् तीव्र वैराग्य एक साथ ही उत्पन्न हो जावे ऐसे भक्त को बहुत ही शीघ्र समाधि की सिद्धि होती है।

प्रश्न–भला जिस ईश्वर की प्राप्ति के लिये बड़े २ उपाय किये जाते हैं उस ईश्वर का क्या लक्षण है और क्या नाम है।

उ०–क्लेश कर्म विपाकाशयै रपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः२४

अविद्यादि दुःख और अन्याय पाप रूपी कर्म और उन की जो वासना जो कि जीवात्मा पुरुषों को होते हैं इन से जो सदा अलगहैं जो सत् चित आनन्द स्वरूप है उस को ईश्वर कहते हैं।

तस्पत वाचकः प्रणवः ॥ २७

उस का मुख्य नाम (ओम्) है॥

तज्जपस्तदर्थ भावनः ॥ २८ ॥

योगी लोग सब अंगों से साधन करते हुए ध्यान योग में इसी (ओम्) अक्षर का जप और इसी के अर्थ का विचार सदा करते हैं यह ऐसा संकेत है कि योगी लोग इसी एक शब्द के अकार उकार मकार तीनों अक्षरों में चारों वेदों की विद्याओं को लीन हुई देखते हैं इस लिये इसी का जप उनको परम प्रिय होता है इन उक्त लक्षणों वाले ईश्वर की उपासना का विधान

पातञ्जल जी ने योगियों के लिये किया है परन्तु इस ज़माने में तो जन्म मरण वाले अवतार और वैकुंठ लोक वा चौथे तथा सातवें आसमान पर रहने वाले कल्पित ईश्वरों की दुनियाँ के लोग उपासना करते हैं फिर योग की सिद्धि किस प्रकार हो सकती है और विना सच्चे ईश्वरकी पहिचानके योग निष्फल है

प्रश्न—यम नियम और योग के नव अंगों का वर्णन तो हमने सुना परन्तु यह इन का साधन इतना कठिन है कि इस वर्त्तमान काल के मनुष्य ५ यमों में से एक शाखा को भी पूरी तरह से साधन नहीं कर सकते हैं जैसे एक सत्य को ही लेलो जो यमकी ५ शाखाओं में से एक शाखा है कि जिसके पूरा करने के लिये राजा हरिश्चन्द्र ने चक्रवर्त्ती राज्यको तुच्छ जान छोड़ दिया और कैसी विपत्ति का सामना करना पड़ा, जब एक अङ्ग के पूरा करने में ऐसी कठिनाई है तो भला पाँचों अङ्गों को पूरा करना किस तरह आपत्ति और दुःखों का सहन कराने वाला होगा इसलिये इस काल के मनुष्यों के लिये तो आकाश और पृथिवी का अन्तर इस मार्ग पर चलने में गिनना चाहिये।

हमारे ध्यान में अगर इस कठिन रास्ते को पार करने के बाद योगसाधन का प्रारम्भ करना मुख्य ठहराया है तो पतञ्जल ऋषि ने वर्त्तमान काल के मनुष्यों के लिये बड़ी आपत्ति खड़ी करदी है। शोक की बात है कि इतने मनुष्य जो जगत में अब वर्त्तमान हैं और जो इस प्रकार के यम नियमों को पूरा करने का सामर्थ्य नहीं रखते क्या वे सब योग विद्या से बिलकुल

ज्ञान हासिल न कर सकेंगे या आगे जो उनकी संतानें होंगी वह आत्मिक आनन्द से सर्वथा ही शून्य रहेंगी।

उत्तर—महर्षि पातञ्जली की इस में कोई भूल नहीं है इस वर्त्तमान समय के मनुष्यों की नासमझी है जो उनके उपदेश को नहीं समझते हैं।

प्र०—क्या कोई सुगम मार्ग इस समय के मनुष्यों के लिये नहीं है जिससे कि हम लोग भी उसको समझ सकें।

उ०—है और बहुत सीधा है परन्तु तुम प्रयत्न नहीं करते।

प्र०—हम तो बहुत प्रयत्न करते हैं परन्तु फिर भी समझ में नहीं आता।

उ०—तुम्हारा प्रयत्न ऐसा है जैसा किसी खुजली वालेका।

प्र०—भला खुजली वाले का प्रयत्न कैसा॥

उ०—देखो एक मनुष्यके तमाम शरीरमें खाज की बीमारी थी अकस्मात वह एक क़िले के अन्दर चला गया उसके अन्दर बड़ा भारी अन्धेरा था वो घुस तो गया परन्तु उसके अन्दर से निकल नहीं सका अब बड़ा दुखी और व्याकुल हुआ कोई बस नहीं चला उस किले में ८४ लाखखाड़ियाँ थी परन्तु निकलने घुसने का दरवाज़ा एक ही था विचारा बड़ा दुखी रहा करताथा एक समय कोई महात्मा परम हंस उस क़िलेकी सैर करने के लिये अन्दर घुस गये और घूमने लगे घूमते हुये मनुष्य उनको नज़र आया उन्होंने योग दृष्टि से उसको बड़ा दुखी देखा और दया करके उसको पूछा कि हे प्राणी तू इस में कब से घूमता है बड़ादुखी हो रहा है तब उस मनुष्य ने

बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर महात्मा से रोदन करते हुए कहा कि महाराज मुझको बहुत मुद्दत इस क़िले के अन्दर घूमते भटकते व्यतीत होगई है परन्तु मुझको निकलने का दरवाज़ा नहीं मिलता है क्या करूं कृपा करके मुझको इसके बाहर कर दीजिये आपकी बड़ी दया होगी तब महात्मा ने कहा कि अरे भोले भाई इससे बाहर जाने का एक ही दरवाज़ा है तू ऐसा प्रयत्न कर कि इसकी दीवार से हाथ लगाकर चारों तरफ़ चक्कर काट जहाँ हाथ खाली पड़े उधर ही को चल देना बस बाहर निकल जावेगा।

पथिक—महाराज मैं मुद्दतों से इसी प्रकार फिरा हूं परन्तु आज तक मुझको दरवाज़ा नहीं मिला।

महात्मा—हे पथिक भला यह तो बतला कि तुझे कोई बीमारी तो नहीं है।

पथिक—महाराज मेरे तमाम शरीर में खजुली बड़े ज़ोर की है खुजाते२ हैरान हो जाता हूं हरदम हाथ खजुली पर ही रहता है।

महात्मा—अच्छा तो हम तुझको एक यही यत्न बतलाते हैं कि तू अबके जो चक्कर दीवार पर हाथ रखकर करे तो कितने ही ज़ोर की खुजली उठे लेकिन दीवार से खुजाने के लिये हाथ मत हटाना यदि तैंने इस खुजली को जीत लिया तो तू एक ही बार में झट बाहर निकल जावेगा।

पथिक—महाराज आपने यत्न तो अच्छा बतलाया परन्तु अब तो आप आगए हैं अतः आप ही मुझको अपने साथ ले

चलूँ तो बड़ी दया होगी क्यों कि महात्मा तो पर दुखभंजक होते हैं इस लिये कृपा करके आप ही मुझको साथ ले चलें।

महात्मा—हे पथिक तू सच कहता है परन्तु मुझको इस किले के मालिक की आज्ञा मालूम नहीं है इस किले के स्वामी की आज्ञा है कि. जो कोई महात्मा इस किले के अन्दर आवे उसका इतना ही कर्त्तव्य है कि वो इस किले के क़ैदियों को बाहर जाने का यत्न बता सकते हैं साथ नहीं लेजा सकते हैं इस लिये मैं उस स्वामी के हुक्म को नहीं तोड़ सकता हूँ तुझ को यत्न बता दिया अब तेरा काम है कि तू यत्न करके ही बाहर जा सकता है इतना कह कर महात्मा उस किलेसे निकल कर बाहर आगए उस पथिक ने महात्मा के उपदेश के अनुसार नियमका पालन किया और दीवारसे हाथ नहीं हटाया खुजली को जीत लिया और बाहर ज्ञानरूपी सूरज के उजाले में पहुंच गया और अज्ञान रूपी अन्धेरे से बाहर हो गया॥

जिज्ञासु—महाराज वह क़िला क्या है और वे चौरासी लाख याठी क्या हैं और वो अन्धेरा क्या है और वह पथिक कौन है और क्यों कर उसमें फंसा इसका पूरा २ भेद समझा कर कहो॥

महात्मा—भाई यह जो संसार है यही वो क़िला है इसमें जो आवागमन जन्ममरण की चौरासी लाख जो योनियाँ हैं येही याठी हैं और अविद्या अज्ञान रूपी अंधेरा है इस में अनेक जो जीवात्मा हैं वेही पथिक है इसमें जो भोग विषय हैं येही खुजली है जब तक भोग विषयों में प्राणी फंसे रहते हैं तब तक जन्म

मरण की क़ैद से नहीं छूटते हैं जब किसी विवेकी का सत संग करता है तो कोई शूरवीर इस खुजली को जीत कर विवेकी बनता है तब ईश्वर भक्ती व योगाभ्यास से इस क़िले से बाहर निकलकर मुक्त हो जाता है इसलिए एक विवेक रूपी दरवाज़ा ही इससे छूटने का साधन है।

इस दृष्टान्त के वर्णन का यह मतलब है कि जिज्ञासु ने जो पूर्व यह कहा था कि हमने योग का ज्ञान सुना, पर समझमें नहीं आता उसके ऊपर यह पूर्वोक्त दृष्टान्त देकर बताया गया है कि समझ में इस लिये नहीं आता है कि भोग विषय रूपी खुजली मनुष्य को विवेक की तरफ़ लगने नहीं देती है इसी लिये मनुष्य जाति ख़राब हो रही है जब इस विषय रूपी खुजली से मन हट जावे तो कोई भी साधन मुशकिल मालूम नहीं देगा सब सुगम हो जाते हैं।

जिज्ञासु—महाराज मन तो बड़ो ही चञ्चल है इसका वश में करना तो बहुत ही कठिन है कोई ऐसा यत्न भी है कि जिस से यह विषयों की तरफ़ न जावे।

महात्मा—मनको वश में करने के अनेक साधन हैं परन्तु मुख्य साधन दो हैं पहला स्वाध्याय और दूसरा व्रत उपवास परन्तु इन दो साधनों की सिद्धि के लिये उपसाधनों की बड़ी आवश्यकता है उनमें से पहला एकान्त वास, एकान्त वास का स्थान ऐसा हो कि जहाँ का जलवायु पवित्र हो भूमि सम हो कंकर्राट न हो उत्तम वृक्षावली हो हिंसक जन्तु न हों धूर्त

पाखंडी हल्ला गुल्ला मचाने वाले न हों दूसरा सत्वगुणी भोजन का प्रबन्धहो तीसरा दशउपनिषद् सांख्य योगवेदान्तदर्शन वेद और पातंजल योगदर्शन ये स्वाध्याय के पुस्तक हों। रात्रि और दिन के २४ घन्टों का ध्यान योग, स्वाध्याय भोजन शयन इन कार्यों में ठीक ठीक विभाग कर लेवे जितना समय जिस कार्य के लिये दिया हो उसमें कभी न्यूनाधिकता न करनी चाहिये अर्थात् दो घन्टा रात्रि शेष रहने पर रात्रि के चौथे प्रहर में उठकर शौचदन्त धावनसे निवृत्त होकर स्नान से शरीर शुद्धि करे फिर पीछे योगांगों में वर्णन किये हुए आसन को लगाकर चार प्रकार के जो प्राणायामों की विधि योगांगों में लिखआये हैं उनमें से प्रथम प्राणायाम का प्रारम्भ कर ओंकार के वैश्वानरीय अकार अक्षर की मात्रा में चित्त एकाग्र करके ध्यान में मगन हो यदि फिर भी चित्त एकाग्र न होवे तो मनुस्मृती के १२ वें अध्याय में लिखे हुये वृतों को करें उन वृतों के करने से, चित्त के मल विक्षेपावरण नष्ट हो जाने पर अवश्य ही चित्त एकाग्र हो जाता है यह निश्चय और अनुभव किया हुआ यत्न है उन में से पहला चन्द्रायणव्रत है कि जो एक मास तक किया जाता है इसको कार्तिक मास में करना चाहिये कार्तिक के प्रारम्भ की प्रतिपदा को इसका आरम्भ करे प्रतिपदा को कृष्णपक्ष के दिन ९ बजे पर एक ग्रास मात्र खावे फिर दूजको दो इस तरह एक ग्रास प्रतिदिन बढ़ाता जावे इसप्रकार मावस को १५ ग्रास खावे फिर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को १४ दूज को १३ इस प्रकार १४ को १ और पूरनमाशी को बिलकुल

उपवास पूर्न मासी को मध्यान्ह समय पूर्णमास्येष्टि और अग्निहोत्र की आहुति विधि पूर्वक जैसी कि संस्कार विधि के गृहाश्रम प्रकरण में लिखी हैं हवन करे और मार्गशिर की प्रतिपदा को दिन में कईवार गोदुग्धपान करे पुनः धीरे २ मूंग की दाल और जौके फुलके खाता हुआ अपनी खुराक पर पहुंचे दूसरा व्रत पराँक् है जो कि १२ दिन का होता है इस को भी कार्तिक या वैशाख मास में करे इस का विधान ऐसा है कि रात्रि को कोरे घड़े को लाकर उस में ताज़ी कुशा जंगल से शुद्धभूमि से लाकर गड़ासी से टुकड़े कर मय जड़ों के पानी में धोकर घड़ेमें भिगोदेवे और १२ दिन तक उसी कुशाओं के पानी को थोड़ा सा उष्ण करर के कई वार थोड़ा२ पीता रहे क्योंकि कुशा में विद्युत शक्ति अधिक होती है इस से व्रती के शरीर में अशक्ति नहीं आती है जब १२ दिन पूरे हो जावे तब तेरहवें दिन मिश्री मिला ताज़ा तुरन्त का दुहा हुआ गाय का दूध जिसको हवा न लगी हो उसको पान करे इसी तरह हलके पदार्थों को धीरे२ सेवन करके खुराक पर पहुंचे इन व्रतों के करने से चित्त के मलविक्षेपावरण सब नाश हो जाते हैं फिर शुद्ध हुआ चित्त योग भूमि में एकाग्र होकर ठहर जाता है॥

जिज्ञासु–महाराज मलविक्षेपावरण किसको कहते हैं और वे कितने प्रकार के हैं कृपा कर यह समझादो।

महात्मा–सांसारिक विषय भोगों की फंसावट से जो चित्त में चंचलता और प्रमादिक होते हैं वे मल विक्षेप कहाते हैं और वे जब चित्त से लिपट जाते हैं तो उनको आवरण

अर्थात् चित्त को लपेटने वाले आवरण कहलाते हैं वे मल विक्षेपावरण ९ प्रकार के हैं अर्थात् १ व्याधि२ स्त्यान ३ संशय ४ प्रमाद ५ आलस्य ६ अविरति ७ भ्रान्ति दर्शन ८ अलब्ध भूमिकत्व ९ अनवस्थितत्व जिज्ञासु, महाराज हमें इनके अर्थ बताओ।

१-व्याधि—जो शरीर में वात पित्त कफ के विकृत हो जाने पर रोग हो जाते हैं इसको व्याधि कहते हैं जब मनुष्य मिथ्या आहार विहार करता है तो वातादि विकृत होते हैं विकारों से व्याधि व्याधि से चित्त व्याकुल रहता है इससे चित्त एकाग्र नहीं होता।

२-स्त्यान- चित्त का किसी कर्म में न लगना अर्थात् निरुद्योगी रहना परिश्रम से जी चुराना।

३-संशय—योग सिद्धि मैं कर सकूंगा वा नहीं मुझसे साधन होगा वा नहीं करूं वा न करूं इसी झंझट में फंसा हुआ रहे।

४-प्रमाद समाधि के साधनों का विचार चिन्तन वा धारण न करना।

५-आलस्य–शरीर और चित्त में भारीपन का होना बार२ जंभाई आना शरीर टूटना खाट में पड़े रहना।

६-अविरति–उसको कहते हैं कि जब चित्त किसी विषय के चिन्तन से आत्मा को मोहित कर देता है।

७-भ्रान्ति दर्शन–उलटा ज्ञान जैसे जड़ को चेतन जानना सीप में चाँदी की भ्रान्ति इत्यादि।

८-अलब्ध भूमिकत्व-समाधि की भूमि का प्राप्त न होना।

९-अनवस्थितत्व-समाधि भूमि प्राप्ति होने पर भी किसी प्रबल विषय वासना के स्फुरित होने पर चित्त का समाधि से लौट पड़ना पुनः चंचल होजाना।

ये ९ मल विक्षेप आवरण चित्त को एकाग्र नहीं होने देते। इसके अतिरिक्त चित्त के विगाड़ने वाले ४ विक्षेप और भी होते हैं।

१-दुःख-१ आध्यात्मिक अर्थात् काम क्रोध लोभ मोह से जो मानसिक दुःख होते हैं।

२-आधि भौतिक-जो दूसरे प्राणी सर्पादिकों से होते हैं।

३-आधिदैविक-जो अत्यन्त वृष्टि अनावृष्टि आदि से इस तरह दुःख तीन प्रकार के।

२-दौर्मनस्य-इच्छा के अभिघात से जो चित्त में क्षोभ उत्पन्न होता है।

३-अंग मेजयत्व--शरीर का काँपना।

४-श्वास प्रश्वास विक्षेप जो प्राण बाहरके वायुका आचमन करता है उस को श्वास कहते हैं और जब कोठा से बाहर को वायु निकालता है उस को प्रश्वास कहते हैं इन दोनों की गति में विक्षेप हो जाना॥

पूर्वोक्त ये ९ विघ्न और (४) दुःखादि योग के शत्रु हैं इन का नाश स्वाध्याय और व्रत उपवास से होता है तब योग का उपासक निर्भय होकर योग में प्रवेश करता है।

जिज्ञासु-महाराज मैं आप के उपदेश से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ आपने चित्त को वश में करने के अति उत्तम उपाय बताए परन्तु अब कृपा करके यह बताइये कि जब चित्त स्वाध्याय और उपवास से शुद्ध होजावे तब उस को किस पदार्थ में लगाना चाहिये और कैसी भावना उपासक को रखनी चाहिये जिस से कि कोई फिर विघ्न उत्पन्न न हो सके।

महात्मा-मल विक्षेप आवरण के विनष्ट हो जाने पर फिर एक अद्वितीय परमात्मा का ध्यान करे।

जि०-महाराज—जब अनेक विषयों में चित्त को भ्रमण करना स्वाभाविक धर्म है तो वह एक परमात्मामें कैसे ठहरेगा।

महात्मा-यदि अनेक विषयों में चित्त का भ्रमण करना स्वाभाविक धर्म है तो वह एक स्त्री आदि में अन्य विषयों को छोड़ कर क्यों एकाग्र हो जाता है इस से साबित होता है कि चित्त का अनेक विषयों में भ्रमण करना स्वाभाविक धर्म नहीं है किन्तु इस का कारण यह है कि साँसारिक जितने विषय है वे क्षणिक होते हैं उन में चित्त को पूर्ण शाँति न मिलने से उन को छोड़ कर दूसरे विषयों में सुख शान्ति ढूंढने को जाता है इसी लिये कहते हैं कि चित्त क्षणिक और भ्रमण शील हैं परन्तु वास्तव में यह दोष साँसारिक विषयों के क्षणिक होने से चित्त में आरोप किया जाता है परन्तु परमात्मा में जब चित्त को लगाया जाता है तो ब्रह्मानन्द रस में क्षणिकत्व न होने से चित्त में असन्तुष्टता उत्पन्न नहीं होती इस लिये उस में से हटना नहीं चाहता जब हटना नहीं चाहता तो साबित हुआ कि चित्त

में एकाग्र होने का गुण तो अवश्य है परन्तु जब तक उसे ऐसे एक तत्व में न लगाया जावे कि जिस में से चित्त को हटाने की कोई आवश्यक्ता प्रतीत न होवे किन्तु पूर्ण आनन्द की प्राप्ति में मगन हो जावे और साँसारिक सारे विषय विष की तुल्य प्रतीत होने लगें और उन से घृणा उत्पन्न हो जावे तभी चित्त अवश्य एकाग्र होगा इस लिये विषयों में भ्रमण करना चित्त का स्वाभाविक गुण नहीं।

जिज्ञासु—महाराज आप की अमृत ज्ञान मयी वाणी से मेरे चित्त का अज्ञान नष्ट होता जाता है अब कृपा करके भावना का वर्णन कीजिये।

हे जिज्ञासु—योगी पुरुष को जब तक मोक्षकी सिद्धि न हो तब तक संसारी पुरुषों से कुछ सम्बन्ध रहता है और पुरुष अनेक प्रकार के विचार वाले होते हैं कोई पुण्यात्मा कोई पापी कोई दुःखी कोई सुखी उनमें योगी अपने चित्तमें कैसी भावना रक्खे इस का वर्णन करते हैं।

१–जो सदाचारी ऐश्वर्य्यवान् सुखी हैं उन से मित्रता का भाव रक्खे।

२–जो दुःखित हैं उन पर दया और उन के दुःख दूर करने के उपाय बतादे।

३–पुण्य शील जिन के पवित्र कर्म और दानी सत्पात्र दान देने वालों को देख कर प्रसन्न होना।

४–पापीयों को देखकर न उनसे वैर करना न मित्रता करना किंतु अलग रहना।

इस प्रकार४ प्रकार के पुरुषों से ४ प्रकार की भावना रखने से योगी का चित्त प्रसन्न रहता है।

जिज्ञासु–क्या महाराज योगी का मन भी चलाय मान हो जाता है।

म०–भाई ये मन बड़ा प्रबल है इसीलिये योगी पुरुष सोते जागते बैठते उठते अहर्निश इसको पवित्र रखने दुर्वासनाओं से बचाने एकाँत वास करने जन समुदायमें न जानेआदि यत्नों से इसका बड़ा ख़याल रखते हैं जैसा कि एक दृष्टान्त से तुमको इसकी करतूत समझाता हूं। एक नौकर किसी नगर के बाज़ार में ऊँची आवाज़ से पुकारता हुआ फिरने लगा कि कोई नौकर रक्खेगा तो मैं उसकी नौकरी करूंगा। जब कोई पूछता कि भाई क्या मासिक वेतन लोगे और काम क्यार कर सकोगे तो वह उत्तर देता था कि जितने काम स्वामी के घरके होंगे हम सब कठिन से कठिन कामों को करेंगे क्यों कि हम थकते नहीं हैं परंतु यदि स्वामी हमें १ मिनट भी ठाली रक्खेगा तो उसके घरमें आग लगा देवेंगे कपड़े फाड़ेंगे बर्त्तन तोड़ेंगे ठाली रहने पर बड़े उपद्रव करेंगे और मासिक वेतन यह है कि यदि मैं नौकरी से इस्तीफ़ा दूं तो मेरे नाक कान काटले और यदि स्वामी बर्ख़ास्त करेगा तो मैं उसके नाक कान काट कर लेजाऊंगा इस नौकर की ऐसी बात सुन कर किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उसे कोई नौकर रक्खे। परंतु सारे नगर में घूमतेर उसको एक पुरुष ऐसा मिला कि जिसने बड़ी हिम्मत करके पूर्वोक्त श..ों पर रक्खा और अपने घर लेजाकर अपने

घरके सारे काम गिनादिये इस नौकर ने झट२ सारे कार्य्य पूरे कर दिये और स्वामी के सामने जा खड़ा हुआ कि मैंने सब काम कर दिये अब और काम जल्दी बतलाओ क्यों कि मुझसे ठाली नहीं रहा जाता।

नौकर की इतनी वार्ता सुन कर स्वामी घवड़ाया क्यौं कि घर का काम कोई शेष नज़र नहीं आया जब तो नौकर ने झट छुप्पर फूंक दिया कपड़े फाड़ दिये वर्तन तोड़ डाले अब गृह स्वामी को अत्यन्त दुःख हुआ और सोचने लगा कि यदि अब इसे जो वर्खास्त करता हूँ तो मेरे नाक कान काट कर लेजायगा इस प्रकार व्याकुल चित्त से वड़े शोक में डूवगया इसी अवसर में अकस्मात् एक महात्मा भिक्षार्थ इस गृह स्वामी के दरवाज़े पर आ निकले और अलख जगाया गृह स्वामी ने आँखें खोल कर ज्योंही महात्मा की तरफ़ देखा तो उस के दिलमें उस तप की मूर्ति को देखकर कुछ शोक दूर हुआ और बोला महाराज क्या हुक्म है परन्तु महात्मा फ़ौरन पहिचान गए कि इस के दिलमें कोई रंज है और कहा कि भोले भाई तेरे ऊपर क्या आपत्ति है शीघ्र वता क्यों कि बिना वताए दुःख का यत्न नहीं मिलगा तब गृह स्वामी वोला कि महाराज आप भिक्षा ले जाइये मेरी मुसीबत लाइलाज है तब तो महात्मा ने कड़क कर कहा कि क्या हम ऐसे राक्षस हैं कि जो मुसीबत ज़दा से भिक्षा ग्रहण करें हम जब तक तेरी मुसीबत दूर न कर देवेंगे तब तक हर्गिज़ भिक्षा ग्रहण नहीं करेंगे तू शीघ्र ही अपनी मुसीबत का वर्णन कर। महात्मा जी के इस

प्रकार कहने पर उसके प्राणों में जीवन आगया और कहने लगा कि महाराज मैंने यह नौकर इस शर्त पर रक्खा है कि यदि मैं बरख़ास्त करूं तो मेरे नाक कान लेलेना और तू इस्तीफ़ा देगा तो तेरे नाक कान मैं लेलूंगा और इसने नौकरी यह ठहराली कि जो मुझे १ मिनट भी ख़ाली रक्खोगे तो मैं तुम्हारा नुक़सान करूंगा इस शर्त को मैंने इसलिये मानलिया कि कहाँ तक काम करेगा आख़िर तो करते २ थक जावेगा परन्तु यह ख़याल मेरा ठीक न निकला और मेरे पास जब कोई काम बताने को शेष न रहा तो यह देखो छप्पर फूंक दिया और कपड़े फाड़ रहाहै कहीं बर्त्तन तोड़ रहाहै कृपाकर इसको क़ाबू में लाने का उपाय शीघ्र बताइये यही बड़ी भारी मुसीबत मेरे ऊपर आपड़ी है कि जिसको मैंने ख़ुद अपनी बे अक़्ली से बुलाई है। महात्मा जी ने कहा कि तू बहुत ही जल्दी उठ और एक बड़ी मज़बूत बाँस बल्ली कहीं से ला मैं इसी वक्त इस नौकर को तेरे क़ाबू में करे देता हूं यह गृह स्वामी तुरन्त ही एक बल्ली लाया, महात्माजी ने हुक्म दिया कि इस को एकगज़ के क़रीब भूमि में मज़बूती के साथ गाढ़ दे, चुनाचे उसने उसी वक्त उसको अच्छी तरह ठोकर कर गाढ़ दिया जब वह बल्ली गाढ़दी गई तो महात्मा जी ने गृह स्वामी को उपाय बतलाया कि हे मित्र जब तक तेरे स्मरण में गृह का कार्य्य कराने को हो तब तक तो इससे काम कराता रहे जब जाने कि अब कोई काम नहीं रहा तो इससे तुरन्त कह दिया कि इस बल्ली पर बार बार चढ़ता रहे और उतरता रहे त

निश्चन्त आनन्द से रह तेरा बाल भी बाँका यह नौकर नहीं कर सकता जब कोई कार्य्य हुआ तभी वल्ली से अलग करके काम करा लिया जब सब काम करा लिया था तो फिर हुक्म दे दिया कि आ वल्ली पर चढ़ और उतर उसने फ़ौरन नौकर को हुक्म दिया कि तू इस बल्ली पर चढ़ और उत्तर, हुक्म देकर वह गृह स्वामी प्रसन्न हो कर महात्मा के चरणों में गिर पड़ा और बोला कि हे प्राण दाता आज मुझे मेरे सर्व नाश से बचाने के लिये ईश्वर ने ही आप को भेजा है मेरे पास कोई ऐसी चीज़ नहीं है कि जिस से मैं आप से अनृण हो सकूं कृपा करके अब जो कुछ भी रूखा सूखा भोजन है इस को ग्रहण कर मेरी यह अल्प सेवा स्वीकार कीजिये, महात्मा जी ने भोजनार्थ मधूकरी ले और आशीर्वाद देकर उपवन का रास्ता लिया। अब वह नौकर अपनी सब चाल भूल गया सारा अहंकार उसका धूल में मिल गया और सोचने लगा कि अहो आश्चर्य्य इस महात्मा ने इस गृह स्वामी का जिसको कि मैंने अपना गुलाम बना लिया था आज मुझे इसने अद्भुत उपाय बता कर हमेशा के लिये गुलाम बना दिया और ऐसा इलाज बताया कि अब मैं गृह स्वामी की मरज़ी के खिलाफ़ कुछ भी नहीं कर सकता हूँ यदि करूंगा तो गृह स्वामी फ़ौरन मेरे नाक कान काट लेगा अतः मैं अब हमेशा के लिये गृह स्वामी के हाथ बिक चुका अब मुझको यही उचित है कि मैं गृह स्वामी के लिये उत्तम२ विचार और कार्य्य करूं जिससे कि वह मुझसे प्रसन्न रहे और ऐसा यत्न करूं कि

इसको इस मुल्क के चक्रवर्ती राजा से मिलादूं जिससे कि यह सब चिन्ताओं से छूट कर अत्यन्त सुखी होजावे और मैं इस से छुटकारा पाकर अपनी जननी की गोद में जा बैठूं।

जिज्ञासु–महाराज आपने जो ये दृष्टान्त सुनाया सो ये है तो बड़ा रोचक परन्तु मैं इसका अभिप्राय नहीं समझा कृपा करके यह बतलाइये कि वह नौकर कौन है और गृह कौन है स्वामी कौन है और वह अग्नि क्या है तथा वल्ली क्या है और नाक कान क्या हैं और वह महात्मा कौन है।

महात्मा—हे मित्र वह नौकर सब प्राणी मात्र के अन्दर रहने वाला मन है और जीवात्मा इस शरीर रूपी गृह का स्वामी है इसी एक घर में ये स्वामी और सेवक सदा दोनों रहते हैं मनुष्यों की जो इस संसार में प्रतिष्ठा है वही नाक का हैं जब ये काट लिये जावें तो मनुष्य कुरूप हो जाता है तब वह नकटा और बूंचा कहलाता है काम क्रोध लोभ मोह येही अग्नि है हृदय ही आँगन है ओंकार ही वल्ली है।

जो मनुष्य इस मन को ईश्वर की भक्ति और सत्संग विवेक के रंग में नहीं रंगता तब यह बाह्य वृत्ति होकर संसार रूपी बाज़ार में घूमता है और उस में से बड़े सुन्दर२ भोग विषयों के दृश्य ला ला कर अपने स्वामी जीवात्मा को देता है यह जीवात्मा उन भोग विषयों के दृश्यों में फंसकर बार २ इस मनको पापकी ओर प्रेरणा करताहै और मन बार२इसके संमुख उन भोगों के रूपकों को पेश करता है असली भोग नहीं लासक्ता है तब जीवात्मा उन भोगों की कामना में मोह को

प्राप्त होजाता है जब जीवात्मा असली भोगकी अप्राप्तिसे अत्यंत दुखी हो जाता है तो मन उस के सन्मुख भोग की सांकल्पिक तसवीर पेश करता है तब जीवात्मा में संग की इच्छा उत्पन्न होती है इस संग से फिर काम की उत्पत्ति होती है तब शरीर से वीर्य्य स्रवित हो कर उपस्थ के समीप प्राप्त होता है पुनः जीवात्मा में असली भोग की प्राप्ति न होनेसे क्रोध की उत्पत्ती हो जाती है इस तरह से मन के वश में होने से शरीर रूपी घर क्रोध की अग्नि से जलने लगता है तब तो जीवात्मा ऐसी विपत्तीमें ग्रसित होजाता है कि इसको उस समय सत् असत् पाप पुण्य का कुछ भी विवेक नहीं रहता और प्रतिष्ठा भंग होने लगती है ऐसी दशा में इसको किसी पूर्व पुण्य के प्रभाव से कोई परोपकारी महात्मा प्राप्त हो जाता है और वह दया कर के अपने सत् उपदेश से इसके हृदय से वह विषयाशक्ति का परदा तोड़ कर उसके हृदय में ओंकार रूपी बाँस गाड़ कर और उसके मनको इस बाँस पर चढ़ाने उतारने की तरकीब बतलाकर मन को वश में करा देता है तो उस प्राणी को सब दुःखों से छूटकर परमाआनन्द की प्राप्ति हो जाती है अब वह मुक्त हो जाता है तब यह जीव सूक्ष्म शरीर का एक तत्व जो प्राकृतिक मन है वह भी प्रकृति देवी में लीन हो जाता है इस लिये महात्माओं ने कहा है कि (मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः) अर्थात् इस संसार में मनुष्य के लिये बंध और मुक्ति के कराने में मन ही परम कारण है इसी लिये योगी लोग रात दिन बड़ी सावधानी के साथ एकान्त वास

और तप दम स्वाध्याय से मन को पवित्र रखने में अत्यन्त प्रयत्न वान रहते हैं ॥

मन मारें तन बस करें शोधें सकल शरीर ।
योग ध्यान में रत रहें करें मुक्ति तदबीर ॥ १ ॥

जिज्ञासु-महाराज आप के इस मधुर उपदेश ने मेरा मन परमात्मा की भक्ति में तत्पर कर दिया है अब कृपा करके यह सुनना चाहता हूं कि अन्तःकरण कितने हैं और उनका आत्मा के साथ क्या २ सम्बन्ध हैं ।

महात्मा-अन्तःकरण ४ हैं अर्थात् मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार । जैसे जीवात्मा के ज्ञान और कर्म के साधन बाहर हैं जिन को ५ ज्ञान इन्द्रिय और ५ कर्म इन्द्रिय कहते हैं इसी प्रकार अन्दर के ये उक्त चार करण अर्थात् साधन हैं ।

इन सब करणों और शरीर का जीवात्मा के साथ जो सम्बन्ध है अब उस का वर्णन करते हैं ध्यान देकर सुनो —

इस मनुष्य शरीर में जीवात्मा रथी है और शरीर रथ है और बुद्धि इस का सारथी है और मन लगाम है और दश इन्द्रियाँ इस में घोड़े जुते हुये हैं और विषय भोग इन्द्रिय रूपी घोड़ों के चलने की सड़क है इस लिये इस शरीर में मन और इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोक्ता जीवात्मा ही कहाता है ।

जब यह रथी जीवात्मा अपने बुद्धि रूप सारथी को अविद्या अविवेक से युक्त रखता है तो ये बुद्धि रूप सारथी मन रूपी लगाम को पकड़ना न जान कर दश घोड़ों को वश में नहीं रख सक्ता है तब स्वतंत्र मन रूपी लगाम के बिना पकड़े सब घोड़े

अपनी स्वतन्त्रता से चाहे जिधर रथ को ले जाते हैं कभी नेत्र रूपी घोड़ा रूप की तरफ़ दौड़ता है तो श्रोत्र रूपी घोड़ा गायन रूपी शब्द की तरफ़ रथ को खींचता है तो तीसरा त्वचा रूपी घोड़ा कोमल स्पर्श के लिये नारियों की तरफ़ खींचता है तो चौथा नासिका रूपी घोड़ा सुगन्ध की ओर खींचता है पुनः पाँचवाँ जिह्वा रूपी घोड़ा खट्टे मीठे चरपरे आदि रसों की तरफ़ छलें मारता है इस प्रकार से शेष पाँच घोड़े भी अपने२ कर्म पर स्वतन्त्र चलना शुरू करते हैं वाणी रूप घोड़ा अविवेक के शब्दों से छिन छिनाता है तो हस्त रूपी घोड़ा अग्राह्य को को ग्रहण करता है पग रूपी घोड़ा कुमार्ग पर दौड़ता है तो उपस्थ रूपी घोड़ा अगम्या गमन करता है और वायु रूपी घोड़ा मल को नहीं फैंकता है इस प्रकार से अविवेकी सारथी से घोड़े वश में न होने पर चारों तरफ़ को जब रथ को उलटा सुलटा खींचते हैं तब रथी की जान बड़े संकट में पढ़ जाती है और महा दुखी होकर विलाप करता है, और रोर कर कहता है कि यह रथ किधर चला मैं फंस गया अरे सारथी तू कैसा गंवार है जो घोड़ों को क़ाबू में नहीं लाता है अरे दुष्ट देख यदि यह रथ बीच बियाबान जंगल में कहीं टूट गया तो बड़ी दुर्गति में पड़ जाऊंगा यहाँ पर कोई भी ऐसा कारीगर नहीं है जो इसकी मरम्मत कर सकेगा हाय मैं अपनी मंज़िल अभी पूरी नहीं कर सका अभी तो यह रथ सिर्फ़ २० ही वर्ष का है ये तो १०० वर्ष चलने के योग्य था हा इसमें मैंने बैठकर अभी कुछ भी भोग नहीं भोगे और न कुछ दुनियाँ की सैर ही की है

और अभी तो ये रथ नया है सो इसको अभी घोड़े अपनी२ ओर को खींच कर तोड़ें डालते हैं अरे सारथी तू क्या ग़ज़ब कर रहा है अरे दुष्ट मैंने इस रथ में बैठकर अपनी कोई भी तृष्णा पूरी नहीं की तू क्या पागलपन कर रहा है अरे इन घोड़ों को किसी प्रकार रोक और क़ाबू में करके जल्दी सीधी सड़क पर ला। तब सारथी जवाब देताहै कि महाराज मैं क्या करूं आपने मुझको सारथी की कुछभी तो विद्या नहीं सिखाई देखिये ये लगाम ऐसी बुरी है कि घोड़े इसको बिलकुल नहीं मानते हैं यदि आप इसको भी सत्यता का पता देकर मज़बूत बनाते तो भी घोड़े कुछ रुकते फिर आपने अपने घोड़े भी किसी विवेकी अश्व विद्या के जानने वाले गुरु से सुशिक्षित नहीं बनवाये और मुझको भी आपने मूर्ख रक्खा अब मैं इनको किस तरह क़ाबू में लाऊं महाराज यह आप सत्य जानिये कि ये घोड़े इस संसार यात्रा को पूरी हर्गिज़ नहीं करने देवेंगे ये तो अब किसी गहरे ग़ार में पटक कर रथ को चूर२ कर देवेंगे मेरे वश में अब ये बिगड़े हुए हट्टर घोड़े कभी नहीं आसकते हैं चाहे इनको अब कितनी भी मार दीजिये अब आप इस रथ से इस आशा को भी छोड़ दीजिये कि जो आप इसके द्वारा किसी पड़ाव पर पहुंच कर आराम से ठहर जावेंगे ये तो बिलकुल चूर२ हुआ जाता है और घोड़े भी कमज़ोर होकर आगे लेजाने के योग्य नहीं रहे हैं।

देखिये आपके साथ से वे ब्रह्मचारी वाणप्रस्थी सन्यासियों के रथों के घोड़े कैसे शाइस्ता हैं और उनकी लगामें कैसी

मज़बूत है और उन के सारथी कैसे अश्वविद्या के ज्ञाता हैं कि उनका कोई भी घोड़ा सारथी की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कनौती नहीं बदलता है देखो वो ब्रह्मचारिणी सुलभा का रथ कैसे तेज़ी के साथ स्वर्ग की ओर जारहा है देखो वो पतिव्रता सीता दमयन्ती सावित्री के रथ आकाश में कैसे आनन्द के साथ यात्रा कर रहे हैं ये सब महात्मा और देवियाँ धन्य हैं, जिन्होंने अपने रथ और सारथी और घोड़े तथा लगाम ब्रह्मचर्य विद्या और तपोबल से महान् दृढ़ और सुन्दर बना रक्खे हैं जिनके द्वारा निर्भय होकर मोक्षधाम और स्वर्ग की ओर जा रहे हैं और निश्चय वे मंज़िल पूरी करके परमधाम पर पहुंचेंगे परंतु हे स्वामी मुझे आपने मूर्ख सारथी बनाकर व्यर्थ ही मुझे और अपने को नर्क में गिराया अब मैं आप का भला कैसे कर सक्ता हूं, हे जिज्ञासु तूने अविवेकी रथी सारथी और लगाम तथा घोड़ों के सम्बन्ध अर्थात् आत्मा बुद्धि मन और दश इन्द्रियाँ तथा रथ शरीर के सम्बन्ध से आत्मा को होने वाले परिणाम को सुना और विचारा कि अन्तःकरण से किस प्रकार जन्म का सुधार और बिगाड़ हो सक्ता है।

जि०-हाँ महाराज मैंने अच्छी तरह से सुना और मेरे चित्त में बड़ी शान्ति उत्पन्न हुई है परंतु अब कृपा करके उत्तम रथी और उत्तम सारथी तथा शाइस्ता घोड़ों का और उत्तम रथ के द्वारा रथी की होने वाले फलका कृपा करके वर्णन कीजिये।

म०-हे जिज्ञासु जिस जीवात्माने इस मान व रूपी उत्तम रथ

के संपूर्ण अवयव और सारथी घोड़े तथा लगाम को सदाचार में स्थिति करके लोकयात्रा करता है वह विजय को प्राप्त होता है अर्थात् प्रथम बुद्धि रूप सारथी को वेद, वेदांग उपासना काँड, कर्म काँड विज्ञान काँड इन त्रयी विद्याओं से युक्त कर लिया है ऐसा बुद्धि रूप सारथी मन रूपी लगाम को ठीक वश में रखके दश घोड़े, जो पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ पाँच कर्म इन्द्रियाँ हैं उनको भी ठीक २ क़ाबू में करके अपने स्वामी जीवात्मा को सुख पूर्वक संसार यात्रा कराता हुआ मुक्ति के स्थान पर पहुंचा देता है। क्योंकि जिसकी बुद्धि ब्रह्म विद्या से युक्त होती है उसी का मन भी पवित्र होता है और जिसका मन पवित्र होता है उसीकी इन्द्रियाँ भी पाप की ओर नहीं जा सक्ती। तब इस प्रकार के शरीर रूपी रथमें स्थित आत्मा इस लोक में यात्रा करनी प्रारम्भ करता है तो जीवन के चारों पड़ावों पर अपना कर्त्तव्य करता हुआ अर्थात् पहिला पड़ाव ब्रह्म चर्य्य का है इस में वृद्ध विद्वान् माता पिता गुरु आचार्य्य के आधीन होकर उनसे विद्या विज्ञान को प्राप्त करता हुआ समावर्त्तन अर्थात् बल और विद्या की समाप्ति पर विद्वानों राजा प्रजासे योग्यता का प्रमाण पत्र लेकर इस आश्रम के कर्त्तव्य को पूरा कर आगे दूसरे पड़ाव गृहाश्रम की यात्रा करने की तैयारी करता है इस यात्रा में अकेला नहीं जाता किंतु इसके महान कर्त्तव्य की पूर्त्ति के लिये एक सहायक की आवश्यक्ता होती है, परंतु वो सहायक भी ब्रह्मचर्य्य विद्या युक्त समावर्तन कर चुका हो तभी ठीक यात्रा होगी यदि कहीं मूर्ख का साथ होगया

तो यात्रा में सिवाय दुःखके सुख नहीं मिलेगा इसलिये इसंयात्रा खंड में तीन ऋण चुकाने होते हैं जिनको कि इसने ब्रह्मचर्य्य आश्रम में माता पिता और गुरुओं और देवताओं से बतौर क़र्ज़ा के हासिल किये थे वे तीन ऋण ये हैं १ देवऋण २ पितृ ऋण ३ ऋषि ऋण १ देव ऋण। यह है कि ब्रह्माण्ड की सारी दिव्य शक्तियाँ सूर्य्य चन्द्र अग्नि पृथिवी जल आकाश वायु आदि देवताओं से हासिल की हैं तभी मनुष्य का शरीर बना है इस लिये हवन यज्ञ अग्निहोत्र बलिवैश्वदेव आदि यज्ञों के द्वारा देवताओं का ऋण चुकाने के लिये गृहाश्रम में यज्ञों को नित्य करता रहे परन्तु यज्ञ पति और पत्नी के द्वारा किये जाते हैं इसलिये इस यज्ञकी पूर्त्ति के लिये पवित्र कुलकी सवर्णायुवा कन्या ब्रह्मचारिणी अपने माता पिता के गोत्र और कुटम्ब की न हो उसके साथ वेद विधि से विवाह संस्कार कर नित्यप्रति देवताओं को भाग देवें क्योंकि श्री भगवद्गीता में लिखा है कि हे अर्जुन यज्ञ से प्रसन्न होकर देवता मनोवाँछित फल देते हैं परन्तु जो देवताओं को यज्ञ में भाग न देकर केवल आप ही स्वादिष्ट भोजनों को भोगते हैं वे लोग देवताओं के चोर हैं॥१२॥

इसलिये यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न का जो भोजन करते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं परन्तु वे पापी जो आप ही भोजन करते हैं और यज्ञ नहीं करते वे पापों ही का भक्षण करते हैं। (गी० अ० ३। १२। १३)

इस प्रकार पति पत्नी दोनों इस गृहाश्रम की यात्रा में देव यज्ञ ब्रह्म यज्ञ बलिवैश्वदेव यज्ञ पितृ यज्ञ अतिथि यज्ञ इसको

क्रम से करते हुए देव यज्ञ से देवताओं का ऋण चुकावें पुनः दूसरा ऋण ऋषियों का है जिन विद्वान् गुरुओं से वेदादि शास्त्र विद्या पढ़ी हैं उनका ऋण चुकाने के लिये ब्रह्मचारी विद्यार्थियों को भिक्षा देना विद्यालयों को धनादि दानसे सहायता देना और नित्य प्रति वेदों का पाठ करना इन कर्मों से ऋषियों का ऋण चुकाया जाता है इस के पश्चात् पितृ ऋण अर्थात् जैसे परस्पर सिलसिलेवार माता पिता संतान को उत्पन्न करके उनको विद्यावान् कर जाते वे संतान माता पिता बनकेअन्य संतानोंको विद्यावान बनाते आयेतभी संसारमें इस सिलसिले के क़ायम रहने से आदि सृष्टि से लेकर आज तक वेद विद्या क़ायम है यदि सभी मनुष्य जाति वेदों को छोड़ देती तो आज सृष्टि में वेद विद्या न रहती इसलिये इस गृहाश्रम की यात्रा में पितरों का ऋण चुकाने के लिये उत्तम संतान उत्पन्न करके पुनः ब्रह्मचारी विद्वान् बनाकर उनका भी पाणिग्रहण संस्कार कराके नाती का मुख देख कर सब अधिकार पुत्र को देकर और स्त्री को पुत्रों की रक्षा में सुपुर्द करे यदि वह भी तपस्या करना चाहे तो साथ तपोवन में लेजावें और वहाँ सब काम क्रोध लोभ मोह तृष्णा को त्याग कर योगाभ्यास में चित्त लगावें इस प्रकार तीनों ऋणों को चुकाकर वानप्रस्थ आश्रम में योगाभ्यास के द्वारा रातदिन आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार करने में बड़ा भारी परिश्रम करें इस प्रकार इस तीसरे पड़ाव वानप्रस्थ आश्रम में जब योगाभ्यास की सिद्धि हो जावे तो पश्चात् चौथा पड़ाव सन्यास आश्रम का है इस

में सन्यासी का यही कर्त्तव्य है कि योग ध्यान में तत्पर रहता हुआ संसार के मनुष्यों को अपने अनुभव किये हुए रास्ते का सच्चा अनुभव लिखित वा उपदेशों के द्वारा बता जावे जिस से कि शेष मनुष्य भ्रम को प्राप्त न होकर सत्य के मार्ग पर चलते रहें। हे जिज्ञासु इस प्रकार जो मनुष्य अपने सारथी बुद्धि को विज्ञान युक्त करते और मन रूपी लगाम को मज़बूती के साथ क़ाबू में रखते हैं वेही सर्व व्यापक परमात्मा के मोक्ष पद की सारी मंज़िलों को तय करके प्राप्त करते इसमें कोई सन्देह नहीं।

जिज्ञासु–महाराज आपके मधुर वचनों के द्वारा सर्वोत्तम ज्ञानामृत को श्रवण करके मेरे चित्त में बड़ी प्रसन्नता हुई परंतु एक शंका मेरे मनमें उत्पन्न हुई है कि जो आपने चारों आश्रमों के धर्मों को ठीकर पालन कर्त्ता हुआ तीनों ऋणों को चुका कर पश्चात् मन को मोक्ष में लगावे सो आज वर्त्तमान समय में तो कोई भी आश्रम ठीक नहीं और नाहीं वेद विद्या का प्रचार द्विज कुल में है फिर मनुष्यों का उद्धार कैसे होगा।

महात्मा–हे जिज्ञासु तुम्हारा कहना ठीक है परंतु आजकल वर्त्तमान समय में भी तलाश करने पर ऐसे महात्मा कहीं प्राप्त हो सके हैं जो कि जिज्ञासु को सत् मार्ग में अपने उपदेश से निपुण कर उस के उद्धार का यत्न बता देते हैं परंतु जिज्ञासु के मन में हठ और दुराग्रह की टट्टी न लगी होवे सब विद्वानों के उपदेशों को सुनता रहे परन्तु जो अपने आत्मा का कल्याण

करने वाला उपदेश होवे उसको अपने आत्मा में धारण करे विरुद्ध को नहीं।

जिज्ञासु-महाराज यह तो बड़ी कठिन बात है क्यों कि हमारे पास कौनसी कसौटी है कि जिस के द्वारा हम अपने कल्याण की बात को परख सकें।

महात्मा-प्यारे भाई परमात्मा ने मनुष्य के लिये सचाई के परखने के लिये और आत्मा लाभ के लिये ऐसी उत्तम कसौटी दी है कि यदि मनुष्य उस कसौटी के अनुसार अपनी बुद्धि को काम में लावे तो अवश्य ही सत्य की ओर अपने आत्मा के उद्धार का मार्ग तलाश कर सक्ता है कभी धोखा नहीं खा सका है।

जिज्ञासु-महाराज आपने यह बड़े हर्ष की वार्त्ता सुनाई अब कृपा करके उस कसौटी का अवश्य वर्णन कीजिये जिससे कि मैं उसको धारण करके अविद्यान्धकार से छुटकारा पाकर अपने उद्धार और सत्य को जानसकूं।

महात्मा-हे जिज्ञासु वे कसौटी पाँच हैं उन्हीं से मनुष्य सत्य के स्वरूप को जानकर इस संसार से पार होकर मुक्ती को हासिल कर सक्ता है।

उनमें से पहिली कसौटी ईश्वर के गुण कर्म और स्वभावके जो अनुकूल उपदेश हो वह सत्य है जो विरुद्धहो वह असत्यहै।

१ ईश्वर के गुण निराकारता, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, सर्व अन्तर्यामिता, सर्व शक्ति मत्ता, न्याय, दया, आदि हैं। प्रत्येक उपदेश को ईश्वर के स्वरूप विषय में इन उक्त गुणों के

अनुसार परीक्षा करे वह इस प्रकार कि जो निराकार होगा वही सर्व व्यापक हो सक्ता है साकार तो एक देशी होने से सारे ब्रह्माड और अनेक लोकों की प्रजाका बुरा भला दुख सुख कुछ भी नहीं जान सक्ता जो सर्व व्यापक है वही सर्वज्ञ हो सक्ता है एक देशी नही क्यों कि किसी एक मुक़ाम पर रहने वाला ईश्वर हो तो उसे कैसे मालूम हो सक्ता है कि संसार कितना और कैसा है जब ऐसा ईश्वर है तो मुक़ामी होने से वह उसका बनाने वाला भी नहीं हो सक्ता है इसलिये जो सर्व व्यापक है वही सर्वज्ञ भी हो सक्ता। .

जो सर्वज्ञ है वही जड़ चेतन सारे संसार में व्यापक होने से सब के अन्दर के बुरे भले हालात को जान सकता है। इस लिये जो सब के अन्दर मौजूद है वही सर्वान्तरयामी अर्थात् सब को नियम में रखने वाला हो सकता हैं।

जो सर्वान्तरयामी है वही ठीक २ सब प्राणी मात्र को पक्षपात रहित हो कर कर्म फल दे सकता है एकदेशी नहीं।

जो सर्व शक्तिमान है वही न्यायकारी हो सकता है क्यों कि न्यून शक्ति वाला न्याय करही नहीं सक्ता है।

जो सर्व शक्तिमान् है वही सब पर दया करके तमाम ब्रह्मान्ड और लोक लोकान्तरोंकी प्रजाओं औरचिंवटीसे लेकर हस्थी पर्य्यन्त तमाम योनियों के जीवों के लिये खुराक का नित्य प्रबन्ध कर सक्ता है एक देशी नहीं।

अब जैसे ईश्वरके गुणों से ईश्वरत्वका स्वरूप जाना जाता

है वैसे ही उसके गुणों में परस्पर विरोध होने से फ़र्ज़ी ईश्वर का खन्डन भी हो जाता है॥

ईश्वर के कर्म—जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय और कर्मानुसार सब जीवों को फल की व्यवस्था करना ये कर्म ईश्वर ही के हो सके हैं जीवात्मा के नहीं। न किसी ऋषि महर्षि और देवता के हो सके हैं।

ईश्वर का स्वभाव-अनादि अविनाशी अव्यक्त सत्, चित्, आनन्द स्वरूप, अजन्मा, अभय, नित्य पवित्र, अनन्त, अर्थात् जिसकी लंबाई चौड़ाई मुटाई आदि से माप तोल नहीं दुनिया की कोई चीज़ उसकी सीमा(हुदूद)नियत नहीं कर सकी इस लिये कोई उसका अन्त नहीं पासका अतः वह अनन्त स्वभाव है। यह प्रथम कसौटी ईश्वर के विषय की सूक्ष्मता से समाप्त हुई

दूसरी कसौटी

जो सृष्टि क्रमानुसार उपदेश हो वह सत्य है इस क्रम के परुद्ध असत्य जाने।

जैसे आदि सृष्टि से लेकर आज तक मनुष्य से मनुष्य पशु पक्षी आदि से पशु पक्षी यही क्रम चला आता है इसके विरुद्ध कोई कहे कि हाथी से शेर और मृगी से शृंगी ऋषि पैदा हुए इत्यादि उपदेश गलत और असत्य हैं।

तीसरी कसौटी

वेद विद्या यह ईश्वर की तरफ़ से मनुष्यों के ज्ञान प्राप्त कराने वाली विद्या आदि सृष्टि में प्रकट की गई इस में मनुष्यों

को जितने ज्ञानकी आवश्यकता है जिसके ज्ञानसे मनुष्य जाति धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चारों फलों की सिद्धि कर सकती है जिसमें कि १४ विद्या वर्णन बीज रूप से वर्णन की गई हैं उस वेद के अनुकूल जो उपदेश हो वह सत्य जानना जो कि ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर कृत सृष्टि से मिलान खाता है इसी लिये वेद भी ईश्वर कृत है उसके मानी उसी के छः अंगों व छः उपाङ्गों से किये हुए ठीक होते हैं परन्तु जो महीधर उव्वट सायणादि ने जो अनेक जगह अंगों उपाङ्गों के विरुद्ध किये हैं वे ठीक नहीं ।

चौथी कसौटी आत्म प्रियता

जो२ उपदेश आत्मा को प्रिय होता है वह२ सत्य और कल्याणकारी होता है जो अप्रिय होता है उससे दुखी होता है जितने सदाचार से युक्त उपदेश होते हैं वे आत्मा को सदा प्रिय लगते हैं परन्तु दुराचार की बातें आत्मा को सदा अप्रिय होती हैं परन्तु जब मन रजोगुण और तमोगुण से युक्त होता है तो उसके अन्दर मलीन वासनाओं के आवरण से आत्म ज्ञान ढक जाने से मन की प्रवृत्ति दुराचार में होने लगती है उसी समय आत्म रक्षा के लिये आत्मा में ईश्वर की तरफ़ से तीन उपदेशक उत्पन्न होजाते हैं पहिला-लज्जा यह उपदेश देती है कि हे जीवात्मन् इस मन को क़ाबू में कर इसके ऊपर से रज तम के पर्दे को हटा कर इसको सत्व गुण की चादर उढ़ादे नहीं तो यह यदि तुझको दुराचार की तरफ़ खींच लेगया तो

तुझको दुनियाँ में लज्जित होना पड़ेगा सज्जनों की मंडली से नाम कट जावेगा आँख नीची करनी पड़ेगी। जब इसकी भी बात नहीं मानता तो दूसरा उपदेशक आता है उसका नाम है शंका वह कहती है कि हे भाई कहाँ जाते हो तुमने लज्जा का कहना नहीं माना अब मैं तुमसे साफ़ कहती हूं कि देखो अगर तुम दुराचार करते समय पकड़े गए तो बड़ी दुर्गति होगी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जावेगी क्या तुमको बुरे काममें शंका या शक शुबा नहीं है यदि है तो जिस कार्य्य में शंका या शक शुबा हो उसका नतीजा बुरा होगा या भला उसको निश्चयकिये बिना आगे क़दम न बढ़ाओ जब इसदूसरे उपदेशकसे भी हाथ छुड़ा कर आगे बढ़ता है तो फिर तीसरा उपदेशक जिसका नाम भय है वो आकर कहता है कि हे मित्र क्यों जीवन खराब करते हो देखो ये दिल जो तुमको आगे खींच कर लिये जा रहा है देखो वह चौकीदार घूम रहा है तुम दीवार फोड़ना चाहते हो कहीं जाग पड़गई और पकड़े गए तो हाथों में हथकड़ी और पैरोंमें बेड़ियाँ पहिनोगे माल कुछ भी नहीं मिलेगा और कदाचित् मिल भी गया तो पता लगने पर दुर्गति होगी यदि न भी पकड़े गये तो मनमें हरवक्त भयलगी रहेगी बुरा काम करके सुखकी नहीं नींद सो सकते हो यदि आत्मा ने इन तीनों उपदेशकों की शिक्षा को मान लिया जो कि आत्म प्रिय है तो समझ लो कि सब कुछ प्राप्त कर लिया यदि मन का गुलाम बन कर आत्म प्रिय मार्ग त्याग कर उलटा जायगा तो अवश्य डूबेगा—

५ कसौटी आठ प्रकार के प्रमाण हैं अर्थात् १ प्रत्यक्ष २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द ५ ऐतिह्य; ६ अर्थापत्ति, ७ संभव ८ अभाव।

१-जीवात्मा को मन और इन्द्रियों के संयोग से वस्तुके जो रूप गुण कर्म स्वभाव का निश्चयात्मक ज्ञान हो उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परंतु जिसके मन और इन्द्रियों में कोई रोग लगाहो या नशा से युक्त हो उस का प्रत्यक्ष समीप और अत्यन्त दूर का भी ठीक प्रत्यक्ष नहीं होता है अतः इस संसार में शुद्ध आत्मा और शुद्ध मन शुद्ध इन्द्रियों के द्वारा जो विश्व के सूर्य्य चन्द्र विद्युत पृथिवी आदि में रचनादि क्रिया ज्ञानादि गुणोंके प्रत्यक्ष होने पर उन क्रियाओं का कर्त्ता और गुणों का गुणी सिवाय ईश्वरके अन्य कोई नहीं हो सकता है अतःईश्वर अपने ज्ञानादि गुण और क्रिया कर्त्ता होने से प्रत्यक्ष है।

२ अनुमान—कारण को देखकर कार्य्य का ज्ञान जैसे माता पिता को देखकर संतान का मेघों को देख कर वर्षा का ज्ञान होना। दूसरा कार्य्य को देकर कारणका जैसे घड़े को देखकर मिट्टी का, आभूषणों को देखकर सुवर्ण चांदी का वैसेही सृष्टिको देखकर उसके कारण प्रकृति का ज्ञान होना यह कार्य्य से कारण ज्ञान का अनुमान है। तीसरा सामान्य ज्ञान का अनुमान वह कहाता है कि जो गुण क्रियाएँ जगत् के सर्व पदार्थों को नियम में बाँधने वाले होकर सब में विद्यमान तो हों परन्तु उन का होना बुद्धि मानों को जड़ पदार्थों के स्वभाव से पृथक किसी अन्य ही नियंता के प्रतीत कराने वालेहों जैसे एक घड़ी

में तुला झूला चक्र सुइयों की नियत अवधि की चाल मिन्ट घन्टों को ज्ञात कराने वाले नियम ये बुद्धिमान को घड़ी के सर्व पदार्थों को छोड़ घड़ी कर्त्ता की ओर ले जाते हैं ठीक इसी प्रकार से जगत् के सूर्य्य चन्द्रादि लोकों में जो मास वर्ष की अवधिके नियमचन्द्रादिलोकोंकासूर्य्यके इर्दगिर्दपासघूमना और उदय अस्तके नियम एक लोकसे दूसरे लोककी दूरीका नियम आकर्षण शक्ति का नियम अनेक प्रकार की विचित्र आकृतियों में विश्व के पदार्थों को ढालना इत्यादि अनेक प्रकार के सामान्य ज्ञान से सर्वज्ञ सर्व व्यापक सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर सर्व शक्तिमान अविनाशी नित्य एक रस परमात्मा का जो अनुमान होता है इस को सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहते हैं।

इसी प्रकार इस शरीर पर सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान, इन छः लक्षणों को देख कर ये जड़ शरीर के धर्म नहीं किन्तु इस से पृथक जीवात्मा एक पदार्थ चेतन है जो इस शरीर का भोक्ता है उसी के शरीर में होने से ये लक्षण ज्ञात होते हैं न होने पर नहीं इस लिये जीवात्मा जड़ से पृथक इस का भोक्ता है। वह अनुमान से सिद्ध होता है।

३ अनेक प्रकार की योनियाँ हैं उन सब योनियों के शरीरों में पूर्वोक्त जीवात्मा के होने में छः लक्षण पाए जाते हैं और उनके प्रत्येक योनि के भोग भी पृथक हैं और एक दूसरे के अन्तर्यामी भी नही हैं न एक दूसरे के अन्दर व्यापक हैं एक योनि को छोड़ कर दूसरी योनियों में भी जाते आते हैं प्रत्येक जीवात्मा के स्वाभाविक ज्ञान को छोड़कर मनुष्य देव पित्तर

योनियों में नैमित्तिक ज्ञान की उन्नति और अवनति के देखने से भी अनुमान ज्ञान से निश्चय होता है कि जीवात्मा एक देशी और असंख्य हैं। यह अनुमान ज्ञान दूसरा पूर्ण हुआ।

तीसरा—उपमान-एक वस्तु की तुल्यता से दूसरी अनेक वस्तुओं को जान लेना उपमान प्रमाण कहलाता है जैसे ब्रह्मचर्य के चिन्हों को देख कर यह जानना कि यह ब्रह्मचारी है इसी तरह जहाँ इक चिन्ह वाले देखे समझले कि ये भी वैसा ही ब्रह्मचारी है सन्यास के चिन्हों को एक मनुष्य पर देख कर सर्वत्र समझ लेवे कि यह सन्यासी है इसी प्रकार चोटी यज्ञोपवीत् देख कर समझना कि ये द्विज और केवल चोटी वाला विना पढ़ा शूद्र है, परन्तु आज कल यह ध्यान रहे कि अंग्रेज़ी बावुओं ने इस में गड़ वड़ मचादी है। जिसके डाढ़ी हो चोटी न हो वह मलेच्छ जिस के गले में (फाँसी) नकटाई हो वह ईसाई कुछ गाय के समान हो कुछ नहीं वह नीलगाय इस प्रकार उपमान ज्ञान को समझना।

शब्द ज्ञान चौथा प्रमाण—शब्द वाणी के द्वारा जो उपदेश प्राप्त हो उसको शब्द प्रमाण कहते हैं परन्तु वाणी तो सभी बोलते हैं क्योंकि किसी कवि ने कहा है कि—

दोहा—मुख श्रवण दृग नासिका, सब ही के इक ठौर।
कहि वो सुनिवो वोलिवो, चतुरनको कुछ और॥ १॥

इस लिये शब्द प्रमाण आप्त ही का मानना चाहिये अब यह भी विचारना चाहिये किआप्त किसको कहतेहैं वात्सायन ऋषि ने आप्त का यह लक्षण किया है कि जिसने पृथिवी से

लेकर ईश्वर पर्य्यन्त सब पदार्थों के गुणं कर्म स्वभाव साक्षात् कर लिये हों। जैसा उसके आत्मा में सच्चा ज्ञान है वैसा ही दूसरों पर प्रकाश करता है, पक्षपात निष्कपट और सदा चारी हो जैसा अन्यों को उपदेश करता है वैसाही आप स्वयं भी आचरण करता है जिसने वेद शास्त्रविद्या इतिहासविद्या भूगोल खगोल विद्या देश देशाँतर द्वीप द्वीपान्तर के व्यवहार विद्याओं को भले प्रकार अनुभव किया हो जो जितेन्द्री योगाभ्यासी स्वाध्यायी हो उसको आप्त कहते हैं इन लक्षणों से युक्त आप्त पुरुष के उपदेश किये हुये शब्द अर्थात् वाणी को मानना चाहिये तभी मनुष्य को सच्चाई का रास्ता मिल सक्ता है हर एक मनुष्य की वाणी से कल्याण नहीं हो सक्ता क्योंकि वे खुदही ज्ञानी नहीं तो उसका प्रमाण ही क्या किसी कविने सच कहा है।

दिल जिसने रंगा नहीं कपड़े रंगाए क्या हुआ।
जाना न ब्रह्मानन्द को तो तन सुखाए क्या हुआ ॥१॥
कलि का भिक्षुक बिन पढ़ा मूरख महा अजान।
कुटम सहित नरके गया लिये साथ जिजमान ॥२॥

इसलिये पानी पीवे छान, गुरु करे पहिचान। ए जिज्ञासु समझा तुमने कि वाणी द्वारा उपदेश कैसे महात्मा का मानना चाहिये।

जिज्ञासु—महाराज आपके उपदेश ने मुझे बड़ा निर्भ्रम सीधा रास्ता बताया है अब मैं निश्चय जान गया कि मैं धोखा नहीं खा सक्ता हूं कृपा कर अब ५ प्रमाण श्रवण कराइये।

हे जिज्ञासु ५ प्रमाण—ऐतिह्य है— अर्थात् जो ज्ञान इतिहास यानी किसी महात्मा ऋषि मुनि विद्वान धर्मात्मा, शूरवीर, क्षत्री ब्राह्मण वैश्य आदि विद्वानों के जो जीवन चरित्र हैं जिनके द्वारा यह बात जानी जाती है कि हमारे देश के शूर वीर ज्ञानी धर्मा ऋषि मुनि क्या मानते थे किस मार्ग पर चलते थे कैसा पठन पाठन राजपाट और व्यापार करते थे इत्यादि बातों के ज्ञान के वास्ते इतिहास प्रमाण माना जाता, हे जिज्ञासु जिस देश के पूर्व पुरुषाओं का इतिहास विज्ञान विद्या शूरवीरता न्याय और धर्मानुकूल व्यापार से पूरित होता है उस देशकी संतान में बड़ा उत्साह बढ़ता जाता है इसलिये इतिहास विद्या प्रत्येक देशका जीवन सुधार करने वाली चीज़ है। परन्तु इतिहास सच्चाई से युक्त हो असम्भव न हो तभी देश के लिये अच्छा होगा यदि इतिहास दुराचार से भरा होगा तो देश पतित हो जावेगा।

देखो श्रीराम के इतिहास को पढ़कर मनुष्य में सदाचार की प्रवृत्ति होती है और महाभारत को पढ़कर मनुष्य के मन में शूरवीरता का रस भरजाता है। परन्तु पुराणों ने श्रीकृष्ण जी के इतिहास को इतना गन्दा बना डाला है कि भारतका बच्चा उसको पढ़कर निर्बल दुराचारी और ज़नाना बन जाता है। हे जिज्ञासु पुराकाल में जब कि कुरू वंश का ज़माना था सब लड़का लड़की बालकपन से जवानी तक विद्या पढ़ते थे और गुरुकुलों में निवास करते पश्चात् पूरी जवानी होने पर विवाह करते थे स्वयंवर रचे जाते थे। तैसे ही महावीर योगीराज

कृष्णचन्द्र जी भी ८ वर्ष की आयु में सुदामा जी के साथ गुरु-कुल में विद्या पढ़ते थे, तो अब तुम अपने आत्मा में विचार करो कि उन्होंने कब गोपियों के चीर हरण किये और कब गाय चराईं और गमार ग्वाले के साथ बाँसुरी बजाई और कब बिना विवाही राधा और कुब्जा के साथ विहार किया इस प्रकार के एक महायोगी के जीवन चरित्र को बिगाड़ कर पामर लोगों ने इस देश का नाश कर दिया देखो महाभारत को व्यास जी ने बनाया है और शुकदेवजी उनके पुत्र महाभारत युद्ध से बहुत पहिले मुक्ति को प्राप्त हो चुके थे और पीछे व्यासजी ने युद्ध समाप्त हो जाने पर भारत इतिहास रचा परीक्षित ने ६० वर्ष राज्य किया, इसके पूर्व युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष राज्य किया इस हिसाब से शुकदेवकी मुक्ति को ९६ वर्ष से अधिक बीत चुके थे। तो (यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते) जहाँ मुक्ति में जाकर फिर नहीं लौटता वह परमधाम है। हे जिज्ञासु अब अपने मन में विचारो कि शुकदेव तो मुक्त हो चुके थे फिर परीक्षित को भागवत सुनाना कैसे बन सकता है इस लिये सर्व प्रकार से यह साबित होता है कि भागवत व्यास कृत नहीं। तात्पर्य्य कहनेका यह है कि इतिहास झूठा नहीं किंतु सच्चा हो वही उपकारक होता है उसी से देश को लाभ पहुंचाता है इसलिये इतिहास वही मानने योग्य है जो असम्भव लेखों से भराहुआ न हो अतः महाभारत और वाल्मीकि रामायण ही पवित्र इतिहास हैं।

छटा प्रमाण अर्थापत्ति है—अर्थापत्ति उस को कहते हैं कि एक बात के कहने से दूसरा अर्थ भी सिद्ध हो जावे।

जैसे किसी ने कहा कि देवदत्त के यहाँ पूर्णमास्येष्टि यज्ञ है तो सुनने वाले को यह भी निश्चय हो गया कि यज्ञ वेद मन्त्रों से होता है इस लिये वहाँ वेद पाठी विद्वान अवश्य आवेंगे। अतः चलो वहाँ विद्वानों से वेद गायन सुनेंगे और शंका समाधान भी करेंगे किसी ने निमंत्रण दिया कि आज हमारे यहाँ सभा होगी तो न्योता पाने वालों को यह भी निश्चय हो गया कि कोई विद्वान् व्याख्याता अवश्य आया होगा इस लिये चलो व्याख्यान सुनेंगे इस का नाम अर्थापत्ति है परन्तु कोई कहे कि आज स्वाँग होगा बड़े २ विद्वान् आवेंगे तो यह अनर्थापत्ति है भला वहाँ सिवाय नाचने वालों के विद्वानों का क्या काम।

सातवाँ प्रमाण सम्भव—वह कहाता है कि जो हो सकता है जो नहीं हो सकता है वह असम्भव कहाता है जैसे किसी ने किसीसे कहाकि रावण के दश मुखथे तो यह असम्भवहै ऐसा नहीं हो सकताहै क्योंकि सृष्टिमें ऐसा होतातो वर्त्तमानमें भी कहीं किसी मुल्कमें किसी लड़के के दश मुख होतेसो यह ठीक नहीं हाँ छः अंग और चारों वेद कंठाग्र जिसके हों तो उपमा अलंकार से मानी जा सकती है। किसी ने कहा कि विना माता पिता के लड़का हुआ चन्द्रमा के दो टुकड़े कर दिये मनुष्य के सींग देखे वंध्या के पुत्र का विवाह देखा आकाश का फुल ख़रगोश के सींग देखे ये सारी बातें असम्भव हैं इससे न मानने योग्य हैं लोग कहते हैं कि कर्ण राजा कुन्ती के कान से हुआ मच्छी के पेट से मत्स्योदरी हुई पारवती के मैल से गणेश जी हुए उन का शिर हाथी का और सूंड भी थी

और शेष धड़े आदमी का था ये सारी बातें असम्भव हैं॥ इस लिये मन्तव्य नहीं।

आठवां प्रमाणं—अभाव है जो वस्तु जहाँ न हो वहाँ उस का अभाव है जहाँ हो वहाँ भाव है जैसे किसी ने अपने भृत्य से कहा कि देवदत्त को घर से बुलाला वह देवदत्त के घर पर गया परन्तु वह घर पर नहीं था, उस ने जवाब दिया कि देवदत्त घरपर नहीं है फिर स्वामी ने कहा कि जा पाठशाला में होगा वहाँसे बुलाला वह बुलालाया परन्तु कोई कहे कि आकाशके फूल लेआ तो इसका अत्यन्ता भाव है सारी दुनिया में नहीं मिल सकता क्योंकि आकाशपर फूल होते ही नहीं वहतो निराकार है।

हे जिज्ञासु—ये५ प्रकार की कसौटी सत्या सत्य की खोज के लिये तुम को इस लिये उपदेश की संसार में अनेक प्रकार के प्रमादी ढोंगी मनुष्य होते हैं जो भोले भाले लोगों को अपने चुंगल में फंसा मूंड लेते हैं इस लिये संसार में वर्त्तमान समय में ऐसा ही अन्धा धुन्ध फैला हुआ है सैकड़ों बनावटी ढोंगी योगी बने हुए इश्तहार बाज़ी करते फिरते हैं कि हम तुम को तुम्हारे मृतक पितरों से मिला देवेंगे तुम को एक महीने में सिद्ध बना देवेंगे ऐसे मनुष्यों से दूर रहना चाहिये योग विद्या के ज्ञाता महात्मा बड़े गुप्त रहते हैं किसी से कुछ चाहते नहीं वे रात दिन ईश्वर के ध्यान में मग्न रहते हैं वे किसी ईश्वर भक्ति के प्यासे सज्जन को प्रारब्ध से ही मिल जाते हैं ऐसे सुपात्र में ही योग का बीज बोते हैं कि जो निष्फल कदापि न जावे।

इस लिये तुम महात्माओं के लक्षणों से जानकार होकर उन की पहिचान बड़ी सावधानी के साथ किया करो—

जिज्ञासु—महाराज मैंने आप का बहुत उत्तम उपदेश सुना अब कृपा करके यह भी बताइये कि महात्मा योगियों की क्या पहिचान है।

महात्मा—हे जिज्ञासु योगीजन जिन्हों ने ब्रह्म साक्षात्कार योग के द्वारा किया है उनकी पहिचान यह है कि उनका शरीर हलका हो और नीरोग कोई रोग उनके शरीर में न हो उत्तम वर्ण तेजस्वीहो चेहरा दमदमाता प्रेम की मूर्ति हो वाणी कोमल सुरीली मधुर हो किसी प्रकार की किसी से कुछ लेने की कभी इच्छा भी न करता हो; कृपालु हो भीड़ भड़क्का वा मनुष्यों के समुदाय में नहीं जाता आता व न रहता है एकान्त प्रियहो संतुष्ट हो यह योगी महात्मा की पहिचान है।

हे जिज्ञासु—जिस महात्मा योगी की बुद्धि समाधि अर्थात् ध्यान योग में ठहरी हुई होती है उसके मनमें संसारी किसी भोग की कामना नहीं होती है वह तो अहर्निश परमात्मा के ध्यान में ही अपने आत्मा से संतुष्ट रहता है। उसके चित्त से रोग भय और क्रोध की वृतियाँ दूर भाग जाती हैं वह दुःखों के पहाड़ गिरने पर भी व्याकुल नहीं होता संसारी सुखों की इच्छा नहीं करता वही मनन शील संयमी पुरुष स्थिर बुद्धि वाला योगी जानना चाहिये।

यह परोक्ष ब्रह्म के सिवाय दुनियवी किसी वस्तु में प्रेम नहीं करता वह शुभ और अशुभ पदार्थों को देखकर हर्ष शोक

नहीं करता जो इस प्रकार के लक्षणों वाला महात्मा है उसी को समझना चाहिये कि इसकी बुद्धि योग में स्थिर है।

जब वह महात्मा शब्द स्पर्श रूप रस गंध पाँचों ज्ञान इन्द्रियों के विषयों को खींच कर प्राणायाम के ज़रिये से प्राण में लीन कर देता है जैसे कछुआ अपने सब अंगों को खींचकर खोपड़ी के अन्दर कर लेता है उसी समय उसीकी बुद्धि ब्रह्म ध्यान में स्थिर हो जाती है।

जब उस योगी के पाँचों ज्ञान इन्द्रियों के सब विषय छूट जाते हैं केवल एक सत्व गुणी आहार ही शरीर रक्षा के लिये रह जाता है वह भी परमात्मा के साक्षात्कार से मुक्ति हो जाने पर छूट जाता है इस प्रकार से हे जिज्ञासु महात्मा लोगों को प्रेम भक्ति और लक्षणों से जो पहिचान सकते हैं उन्हीं को महात्मा मिलजाते हैं मूर्खों दुनियाँ के विषयों में संतप्त हैं मन ज़िनके वे लोग महात्मा की कुछ भी क़दर नहीं कर सकते और न पहिचान सकते हैं इसलिये इस मार्ग में दुनियादार आदमी की गम्य नहीं यह मार्ग केवल ईश्वर प्रेमियों का है।

जिज्ञासु–महाराज आपने पीछे ओंकार की वैश्वानरी मात्रा का कुछ थोड़ासा उपदेश किया था सो वह मेरी समझमें अच्छी तरह नहीं आयाहै अब कृपा करके उसकी तीनों मात्राओं और तुरीया अमात्रा का भी वर्णन कृपा करके समझाईये।

हे जिज्ञासु–यह उपदेश बहुत ही बारीक है परन्तु तौ भी यथाशक्ति मैं तेरे लिये कुछ सीधे साधे शब्दों में बताऊँगा तू सावधान होकर सुन।

अकारं चाप्यु कारंच मकारं च प्रजापतिः ।
वेदत्रयाणि निर्दहद्द भूर्भुवः स्वतीति चः ॥१॥

यह महर्षि वैवस्वत मनु का वाक्य है—

अकार, उकार, मकार ये तीनों मात्रा और भूः भुवः स्वः ये तीन व्याहृति, तीन वेदों से प्रजापति परमात्माने योगियों के जपके लिये उपदेश किये हैं।

अकार, मकार, इन तीन मात्राओं से मिल कर (ओ३म्) पद बना है। अकार मात्रा ऋग्वेद की है और उकार मात्रा यजुर्वेद की है और मकार सामवेद की है तथा तुरीय अमात्रपद अथर्व का है जो उच्चारण में नहीं आता है उसको योगी लोग समाधि में ही अनुभव करते हैं।

दोहा—आदिनाद अनहद भयो तातें प्रगट्यो वेद।
पुनि पायो वा वेद में सकल सृष्टि का भेद॥

आदि सृष्टि में मुक्तात्मा सिद्धोंको परमात्मा ने उत्पन्न करके अनादि अनहद ओ३म् शब्दको उन सिद्धों के हृदय देश में प्रकाश किया उसके पश्चात् चारों वेदों का प्रकाश किया तब उन सिद्ध योगी राजों ने वेदों के द्वारा सारे ब्रह्माण्ड के ज्ञान का भेद पाकर सारी दुनियाँ के मनुष्यों को उपदेश किया॥ इस प्रकार उस पवित्र ओ३म् शब्द ही का योगी लोग ध्यान करते हैं॥ क्यों कि यह ओ३म् शब्द जोकि अविनाशी है जिसका कभी नाश नहीं होता है जिसकी महिमा का इज़हार सूर्य्य चाँद नक्षत्र तारागण सारा ब्रह्माण्ड कर रहा है जो कुछ कि भूत-

काल में हुआ था और वर्त्तमान में हो रहा है और भविष्यत् में होने वाला है उस सब में ओ३म् शब्द का, वाच्य परब्रह्म ही तीनों कालों के ऊपर एक रस विराजमान रहता है उसमें कभी रद्दोबदल कमी वेशी नहीं हो सक्ती है और जो त्रिकाला तीत है वह भी ओंकार ही है यद्यपि प्रकृति और जीवात्मा भी अनादि हैं परंतु प्रकृति जड़ और परिणाम वाली है और जीवात्मा भी ज्ञान सम्बन्ध से एकसे नहीं रहते कभी मुक्त कभी बद्ध होते हैं इस लिये उस ओ३म् शब्द वाच्य ब्रह्म की कोई समानता नहीं कर सक्ता है।

क्योंकि वह पूर्ण सर्व शक्तिमान सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी अजर अमर निराकार अजन्मा नित्य पवित्र अविनाशी अभय; सृष्टि कर्त्ता सब को वश में रखने वाला न्यायकारी दयालू सब का धारक पालक उत्पादक संहारक संस्थापक है वह योगी लोगों को ही समाधिमें प्रत्यक्ष होता है और वे ही सब बन्धनों से छूट कर मुक्त होते हैं।

हे जिज्ञासु—उस ओ३म् की प्रथम मात्रा अकार है जिस के अन्दर ऋग्वेद का ज्ञान भरा हुआ है जिस के आधार यह जागृत अवस्था सारी सृष्टि की रचना है इसी रचना पर अकार मात्रा के ऋग्वेद का ज्ञान फैला हुआ है इसी लिये इस ज्ञान को (वहिप्रज्ञ) कहते हैं क्यों कि स्थूल जगत् जो रचा हुआ है योगी लोग संप्रज्ञात समाधि में प्रथम मात्रा अकार के ध्यान से ऋग्वेद के ज्ञान को इस ब्रह्माण्ड से हासिल करते हैं और वे इसकी रचना में अंड और ब्रह्माँड के अन्दर समाधि

योग से प्रवेश कर इनमें, अंग और १६ करणों को व्याप्त देखते हैं। जिस में अग्नि देव शिर के समान सारे ब्रह्मांड और अंड का जीवन है जैसे मनुष्य देह जो कि छोटा ब्रह्मांड होने से अंड कहाता है उसमें जाठराग्नि मुख्य है उसी से शरीर की स्थिति है वैसे ही ब्रह्मांड के भी सारे लोक पिंडों में अग्नि व्याप्त होकर अनेक प्रकार के वनस्पति वृक्षादिक को उत्पन्न और उपचय अपचय क्रियाओं से सब लोकों को क़ायम रखता है जैसे शिर मनुष्य देह के सब अंगों की रक्षा करता है यदि शिर न हो तो सारा देह ही व्यर्थ है इसी प्रकार से सारे ब्रह्मांड का शिर अग्नि है यह पहिला अंग है। दूसरा अंग नेत्र हैं जैसे मनुष्य देहरूपी अंड में दो नेत्र हैं वैसे ही ब्रह्माड के दो नेत्र सूर्य्य और चन्द्रमा हैं यदि ये ब्रह्मांड में दो नेत्र न होते तो इन के बिना मनुष्य अपने नेत्रों से कुछ भी न देख सक्ता इस लिये ब्रह्मांड के नेत्र मनुष्य के नेत्रों के सहायक हैं।

तीसरा अंग दिशा हैं जो कि श्रोत्र अर्थात् कान के समान है वे पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ईशान आग्नेय नैऋति वायव्य ८ दिशायें हैं क्योंकि आकाश में दिशाओं का भेद न होता तो मनुष्य के कान में बिना वायु गमन व आकाश के कैसे शब्द सुनने में आता और यह कैसे जानता कि किधर से शब्द आया इस लिये दिशायें कान हैं।

चौथा अंग वाणी है-चारों वेद रूपी वाणी ब्रह्मांड के अंग आकाश और वायु के संयोग से ही प्रकाशित होती है और आदि सृष्टि में मनुष्य जाति के कल्याण के लिये परमात्मा

ने ब्रह्मांड के उक्त पदार्थों के द्वारा ही सिद्धों के हृदय में प्रकट की इसी लिये वेद ब्रह्मांड की वाणी और ईश्वर का ज्ञान कहे जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य भी वाणी को आकाश और वायु की सहायता से ही उच्चारण करता है। जैसा कि महर्षि पाणिनि जी शिक्षा के आचार्य बतलाते हैं।

आकाश वायुः प्रभवः शरी रात्स मच्चरन् वक्त्र मुपैति नादः। स्थानान्तरेषु प्रविभज्य मानः वर्णत्वमाग च्छतियः सब्दः ॥ १ ॥

अर्थात् आकाश वायु के संयोग से नाभि चक्र से ध्वनि उठती है और प्राण वायु के द्वारा कंठ तक आती है तब उस ध्वनि को नाद कहते हैं और जब वह नाद तालू आदि आठ स्थानों में जिह्वा के द्वारा अकारादि वर्ण भाव को प्राप्त होता है तब उस को शब्द कहते हैं उन्हीं शब्दों से वाक्य और वाक्यों से मंत्र और मंत्र समुदाय का नाम ही वेद हुआ इस प्रकार विराट रूप ब्रह्मांड से वेद प्रकाशित हो कर अंड वा पिंड अर्थात् मनुष्य शरीरों में जीवात्मा के कल्याण के लिये प्रकाशित हुए इस प्रकार विराट ब्रह्मांड की वाणी वेद कहे जाते हैं। पांचवाँ अंग विराट रूप ब्रह्मांड का वायु है जो कि प्राणके तुल्य है जैसे जब तक ब्रह्मांड का वायु गति मान रहता है तभी तक सब शरीर धारी जीव अपने प्राणों से श्वास लेकर जीवन धारण करते हैं यदि वह वायु न हो तो कोई क्षण भर भी जीवन धारण नहीं कर सकता है इस लिये वायु पाँचवां अंगहै।

. ६ छठा अंग हृदय है जो सारे विश्वचराचर जड़ चेतन में व्यापक हो कर सब के सुख दुःख की व्यवस्था करता है इस लिये परमात्मा का विराट रुप ब्रह्माँड शरीर स्थानी होने से उस का हृदय सब प्राणी मात्र हैं क्योंकि मनुष्य भी हृदय गत विचार से सब कुछ व्यवस्था करता है इस लिये छटा अंग विश्वरूपी हृदय है।

सातवाँ अंग पग हैं विराट पुरुष की पृथवी पग स्थानी है क्यों कि जैसे पग सम्पूर्ण शरीर के भार को धारण करते हैं वैसे ही पृथवी सारे पशु पत्ती जलचर थलचर आकाश चर आदि के भार को धारण करती है इस प्रकार जागृत स्थान ; वहि प्रज्ञ अर्थात् स्थूल जगत् रूपी शरीर के सातों अंगों पर है फैला हुआ ज्ञान जिस ब्रह्म का इस लिये उस को प्रत्यक्ष इस जगतरूप शरीर के अंगों सहित जागृत अर्थात् प्रत्यक्ष कहते हैं।

अब जैसे ब्रह्माण्ड के सात अंगों से मनुष्य के सातों अंग क़ायम रहते हैं वैसेही जैसे मनुष्य के शरीर में १९ करण अर्थात् कार्य्य करने के साधन हैं विराट में भी उसी प्रकार मनुष्य के अंगों की सहायता के लिये १९ करण हैं। मनुष्य के शरीर में १९ करण इस प्रकार हैं पाँच ज्ञानेन्द्री पाँच कर्म इन्द्रियाँ और पाँच तन्मात्रा और चार अन्तःकरण एवं १९ करण हैं अब देखो ब्रह्माण्ड रूपी विराट पुरुष में भी १९ करण इस प्रकार हैं। वेद विद्या के ज्ञाता ब्राह्मण उसके मुख हैं क्योंकि विराट से वेद हासिल करके ही ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण उस विद्या का जगत् में प्रसार करते हैं दूसरा करण क्षत्री उसकी बाहू अर्थात् भुजा-

वत् हैं क्योंकि वायु सब के जीवन की रक्षा करता है वैसे ही क्षत्री अपने बाहु बल से प्रजा की रक्षा करे यदि नहीं करता तो नर्कगामी होता है वैश्य उसके ऊरू वा उदर के तुल्य हैं क्योंकि देशदेशान्तर द्वीप द्वीपान्तरों में अनेक प्रकार के पदार्थ व्यापार के लिये पहुंचाता जिससे सारे मनुष्यों को सब देशों के पदार्थ प्राप्त सहज में हो जाते हैं इसी प्रकार शूद्र अर्थात् विन पढ़ मनुष्य अपने शारीरिक बल से सेवा कर्म करके मनुष्यों को दस्तकारी आदि कर्मों से सुख देते हैं अतः वे विराट के पगवत् हैं ये चार करण हुए पाँचवाँ शिर द्यौ अर्थात् प्रकाश है जो सब रूपों को सब प्राणी मात्र को दिखलाता है ६ सूर्य्य चक्षु है ७ वायु कान है ८ प्राण वायु नासिका है ९ जल जिह्वा है क्योंकि जितने रस हैं वे सब जल विकार हैं १० आकाश त्वचा की नाई है. ११ मुख अग्नि है क्योंकि अग्नि ही सब पदार्थों को छेदन भेदन करके अन्तरिक्ष रूप विराट के पेट में पहुंचाता है तभी अन्तरिक्ष में मेघ बनकर वर्षा, वर्षा से अन्न, अन्न से सबके लिये भोजन प्राप्त होते अर्थात् विराट के पेट से सबका पेट भरता है १२ सूर्य्य की किरणें ही विराट के हाथ हैं क्योंकि किरणें ही सब पदार्थों को ग्रहण करती हैं १३ पृथिवी पग है क्योंकि पृथिवी ही सबको लादेर फिरती है १४ अपान वायु ही वायु है १५ मेघ ही मूत्र इन्द्री है १६ चन्द्रमा मन है १७ महतत्व बुद्धि है १८ स्मृति हैं चित्त है १९ अभिमान जो प्रकृति का अंश है वही अहंकार है इस प्रकार से १९ करण और ७ अंग जो ब्रह्माण्ड रूप जगत में गिनाये और मनुष्य शरीर में भी गिनाये

उक्त ७ अंग और १६ करणों से सब प्राणी मात्र को उन२ के कर्मानुसार भोगों को भुगाता और सबका नायक शासक होकर ठीक२ व्यवस्था कर रहा है इसलिये उस अकार मात्र में स्थित परमात्मा को वैश्वानर कहते हैं। जैसे अकार के बिना कोई व्यंजन उच्चारण का प्रकाश नहीं हो सकता है उसी प्रकार वैश्वानर के विना सारे ब्रह्माण्ड और अण्ड पिण्डमें कोई कार्य नहीं हो सकता है इसलिये ओंकार की प्रथमा मात्रा अकार के अन्दर ऋग्वेद और सात अंग १९ करण से युक्त वैश्वानर को संप्रज्ञात समाधि में एकाग्र चित्त से अनुभव करता हुआ ब्रह्मांड के साथ अण्ड का मिलान करना और सारी शक्तियों का कारण वैश्वानर को जान कर उसमें विश्वास जमाना यह वैश्वानरीय उपासना का जागरित अवस्था वाला प्रथम पाद समाप्त हुआ।

अथ स्वप्नावस्था द्वितीयः पादः

हे जिज्ञासु–तुमने वैश्वानरीय उपासना से ओम् की अकार मात्रा के द्वारा स्थूल जगत पर उसकी महिमा का अनुभव किया परन्तु अब आगे बढ़ना चाहिये क्योंकि जो इसी मात्रा में रुक जाता है उसका पुनर्जन्म अवश्य होता है परन्तु इसका जन्म किसी श्रेष्ठ ईश्वर भक्त के गृह में होगा इस लिये अब दूसरी सीढ़ी पर चढ़ना चाहिये जैसे तुमने वृक्ष को देखा और और उसके बीज को भी देखा परन्तु बीज के अन्दर वृक्ष किस

रूप में है अभी उसका अनुभव अवश्य करना होगा जब दू सरी सीढ़ी पर चढ़ोगे तो कुछ अजीब ही जलवा नज़र आवेगा। देखो सुनो सावधान होकर।

जिज्ञासु–महाराज मेरा मन अच्छी तरह एकाग्र होरहा है मैं आपकी मधुर वाणी और सत्यामृत उपदेश के पान करतेर बड़ा मगन होरहा हूं और मैं जानता हूँ कि आपके उपदेश से मेरा जीवन अवश्य पवित्र होगा सो कृपाकर ओंकार की सीढ़ी का उपदेश प्रारम्भ कीजिये।

हे मित्र अब उकार मात्रा का प्रारम्भ किया जाता है इस में यजुर्वेद का प्रवेश है यह जागरित स्थूल गत महिमा का भी अनुभव कराती है और जो स्थूल पर नहीं नज़र आई उसको भी दिखाती है यह कर्म और ज्ञान दोनों को साथर रखती है इसीलिये इसको स्वप्नावस्था के समान तैजस पाद कहते हैं।

जैसे स्वप्न में मनुष्य की बाहर की सब इन्द्रियां अचेत पड़ी रहती हैं और अन्दर पुरतति नाड़ी में मन सहित जीवात्मा स्वप्न के अन्दर दौड़ता खेलता गाता इष्ट मित्रों से बात चीत करता सूर्य्य चन्द्रमा सभी वस्तुओं को देखता और जो२ संकल्प करता है उसीर का स्वरूप देखता है इसी प्रकार योगीजन इस द्वितीय सीढ़ी पर जब पहुंचता है तो बाहर के सब व्यवहारों से मन को और इन्द्रियों को खींच कर दोनों स्तनों के बीच कमलाकार हृदय कमल में जिसको कि ब्रह्मपुर कहते हैं वहाँ लेजाकर अपने आत्मा से ब्रह्म की महिमा को प्रत्यक्ष देखते हैं।

जिज्ञासु—महाराज वहाँ क्या देखता है।

महात्मा—उस कमलाकार हृदय पुण्डीक में जो उसके अन्दर आकाश है उसी में उस ओंकार की जो महिमा है उसी को उसमें ढूंढना और जानना चाहिये।

जिज्ञासु—उस ब्रह्मपुर दहराकाश में क्या२ वस्तु विद्यमान है जिसको जानना वा तलाश करना चाहिये।

जिस तरह से तुमने पहिली सीढ़ी पर ब्रह्माँड वा विराट पुरुष का अनुभव किया था और ७ अंग १६ करणों को देखकर वैश्वानर की महिमा को जागरित अवस्था स्थानी जाना था वह महदा काश में वृत्ताकार थी अब इस दूसरी सीढ़ी पर स्वप्नाव-स्थावत् सूक्ष्म हृदयाकाश में जो कि अन्तः प्रज्ञ अर्थात् जो महिमा महदा काश में स्थूल रूप से विराजमान बहिप्रज्ञ थी वही अब अन्तः प्रज्ञ अर्थात् महान् सूक्ष्म में भी छोटे से हृदय में देखोगे जैसे स्वप्न में बड़े२ मैदान जंगल सूर्य चाँद सब कुछ देखते है वैसे ही समाधियोग से उस ब्रह्म पुर में द्यावा पृथिवी अग्नि बिजली बादल की कड़क सूर्य्य चन्द्रमा नक्षत्र और जो वस्तु जाग्रत में देखी थी और जो नहीं देखी थी वहाँ विवेक के प्रज्वलित होने पर सभी कुछ उस तैजस मात्रा के ध्यान से अनुभव होगा जैसे भूगोल के छोटे से नक़शे चित्र में सारी पृथिवि के पहाड़ सुमुद्रादि सब प्रतीत होते हैं और जो इंच परि-भाण से मीलों का मापक चिन्ह दूरी को ज्ञात कराता है उसी प्रकार इस हृदय स्थान में सारी विश्व को सूक्ष्म बीज में योगी अनुभव करता है।

जि०—महाराज जिस हृदय में बीज रूपी सूक्ष्मा वस्था में विश्व का दर्शन होता है और जिस महिमा को देख कर ब्रह्म की महिमा की अपेक्षा सूक्ष्म में उपासक को और भी अधिक रचना कौशल प्रतीत होता है उस हृदय के नाश हो जाने पर अथवा ज्वरादि रोग हो जाने पर क्या उस तैजस ब्रह्म को भी कष्ट प्रतीत होता होगा।

हे जिज्ञासु उस दहराकाश हृदय कमल नामक ब्रह्मपुर में व्यापक जो ब्रह्म है वह तो इस लिये ब्रह्मपुर कहा जाता है कि जीवात्मा को उसका साक्षात् अनुभव इसी हृदय स्थान में होता है इसी लिये इस को ब्रह्मपुर कहते हैं क्यों कि जीवात्मा एक देशी होने से उसी के लिये ध्यान योग से ब्रह्म प्राप्ति के लिये यह स्थान नियत है परमात्मा तो सर्व व्यापक है उस ब्रह्म पुर हृदय कमल के जीर्ण होने से वह जीर्ण नहीं होता है न उस मनुष्य के मरने से वह मरता है वह तो सत्य स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति का स्थान है जिसमें समाधि योगके द्वारा इस जीवात्मा की सब कामनायें पूर्ण होती हैं जिसके दर्शन से जीव के सर्व पाप भस्म होजाते हैं वह जरामृत्यु से रहित शोक से पृथक और भूख प्यास से सदा अलग है वह सत्य काम सत्य संकल्प है जिसकी प्रकृति में यह सारी प्रजा प्रवेश करती है उसको जो प्राप्त कर लेता है वह इस ब्रह्माण्ड में स्वतन्त्र हो जाता है सूर्य्य चन्द्रादि सर्व लोकों में उसका प्रवेश होजाता है इस प्रकार से यह द्वितीय सीढ़ी ओंकार के उकार मात्रा की वर्णन

की इस मात्रा के ध्यान करने वाले के कुल में कोई भी नास्तिक नहीं हो सकता है अब आगे तृतीय मात्रा का वर्णन होगा।

तृतीय मात्रा मकार है इसमें सामवेद के ज्ञान का प्रवेश है इसकी उपमा-सुषुप्ति के साथ दीगई है सुषुप्ति वह गाढ़ निद्रा कहलाती है जिसमें बाहर और भीतर के किसी पदार्थ का ज्ञान न रहे कारण शरीर प्रकृति में आकर सर्व जीव जाग्रत स्वप्न दोनों अवस्थाओं से रहित होकर अचेत हो सुख की नींद सोते हैं न वहाँ कोई संकल्प है न विकल्प है वह सब जीवों के लिये एकही शरीर है उसमें पापी और पुण्यात्मा सब एकी भूत अर्थात् एक सी दशा में रहते हैं केवल ब्रह्म ज्ञानी ही योग सिद्धि को प्राप्त हुए जागरित मुक्तावस्था में सचेत रहते हैं अन्य सब जीव प्रकृति में शयन करने से मूढ़ अवस्था में रहते हैं परन्तु सुषुप्ति की नाईं जो सिद्ध पुरुष योगीराज योग की तीसरी मात्रा के उपासक हैं वे जब समाधि दशा में होते हैं तो उनमें सुषुप्ति दशा का इतना ही उदाहरण घटता है कि वे समता को प्राप्त हुए ब्रह्म ध्यान में ऐसे लीन हो जाते हैं कि उनको सिवाय ब्रह्मानन्द के अपने स्वरूप का भी ध्यान बिलकुल नहीं रहता वे ब्रह्मानन्द रूपी अमृत का पान करते हुए इस प्रकार दुनिया से और अपने स्वरूप से ऐसे बे ख़बर हो जाते हैं जैसे हालका हुआ बच्चा माता के दुग्ध पान में ऐसा मस्त होता है कि अपने शरीर की कुछ भी सुधि व परवाह नहीं इसलिये इसको अपने निज स्वरूप से सुषुप्त की नाईं परन्तु परमात्मा के आनन्द स्वरूप में मग्न होने से यह तीसरे

पद की अवस्था आनन्द मय और चेतो मुख अर्थात् जड़ प्रकृति से विरक्त केवल एक चैतन्य ईश्वर ही से प्रेम है इस लिये चेतो मुख है इस प्रकार यह अनुभव तृतीय मात्रा में उपासक को हो जाता है जो समाधि में से निवृत्त होने पर जीवात्मा प्रसन्न होकर कहता है कि यही सारे जगत् का शासक है यही सब जीवों के अन्दर व्यापक अन्तर्यामी है यही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का निमित्त कारण है। इस प्रकार नित्य प्रति बड़े उत्साह और प्रेम से प्रातः मुहूर्त और विनाश में समाधि योग में लगा रहता है। अब ये तीनों मात्राओं के पद समाप्त हुए इसके आगे तुरीया अवस्था का वर्णन किया जावेगा।

जि० महात्मा जी जब तीसरे पाद में आनन्द की प्राप्ति होगई तो अब आगे तुरीया अवस्था की क्या आवश्यकता है।

हे जिज्ञासु–मैं तुमको अब तीनों अवस्थाओं के प्रति फलका स्मरण कराके इसके पश्चात् तेरी शंका का उत्तर दूंगा देखो पहिली अकार मात्रा वैश्वानरीय उपासना से स्थूल रचनापर परमात्मा के गुण कर्म स्वभावों का अनुभव करके ईश्वर में विश्वास की स्थिति हुई और ऋग्वेद से गुणों का धारण किया और स्थूल प्रवेश हुआ पुनः उकार मात्रा तैजस के ध्यानसे गुणोंके साथ स्तुति प्रार्थना उपासना ब्रह्मयज्ञ देवयज्ञ पितृयज्ञ भूतयज्ञ अतिथि यज्ञ यजुर्वेदसे धारण किये और सूक्ष्ममें प्रवेश हुआ इसके पश्चात् तीसरी अवस्था मकार की सुषुप्तिवत् समाधि की प्राप्ति से आनन्द मय अभ्यास की प्राप्ति हुई और जगत् से प्रेम छूटा।

अब यह आनन्दमय अवस्था प्रतिदिन समाधि के अभ्यास से जैसे२ बढ़ती जावेगी वैसे२ तुरीया अमात्रा की तरफ़ योगी पहुंचेगा और वह जब तक रहेगी जब तक कि ७२ करोड़ नाड़ियों में बंधा हुआ जो सूक्ष्म शरीर है उसमें से अपने आत्मा को योगी स्वयमेव निकालने की शक्ति हासिल न कर लेवे क्यों कि योगी रोग वा किसी बीमारी से तो मरता नहीं है क्योंकि रोग उसको हो ही नहीं सक्ता है इस लिये जैसे मुंजा में से तुरी को निकालते हैं और साँप जैसे काँचली में से निकल जाता है इसी प्रकार से स्वात्मा को शरीर से पृथक करने की शक्ति असंप्रज्ञात योग द्वारा न करले तब तक शरीर में रहना होगा और जब इसकी सिद्धि पूरी हो जावेगी उसी वक्त शरीर को इस प्रकार से त्याग कर जैसे शकुनी वृक्ष को छोड़ कर उड़ जाता है वैसे ही योगी शरीर त्याग कर ब्रह्माधार होजाता है।

अब तुरीया अमात्र अवस्था का तात्पर्य्य यह है कि तीसरी सीढ़ी तक तो योगी एक२ सीढ़ी पर चढ़ता हुआ अपनी सिद्धि के लिये बाह्य प्रज्ञ, अन्तः प्रज्ञ और प्रज्ञानघन ये सीढियाँ क़ायम कीं परंतु जब इनको तय कर चुका और आनन्द मय अभ्यास पर पहुंचा तब अमात्र तुरीयावस्था का बोध हुआ और जाना कि वास्तवमें ब्रह्म ऐसा नहीं है कि जब बाह्य स्थूल जगत्में जब उसका शासन हो तो अन्तः प्रज्ञ अर्थात् सूक्ष्म में नहीं और जब सूक्ष्म में तो बाह्य में नहीं और जब बाह्य और अन्तः प्रज्ञा वाला हो तो स्व स्वरूप में न हो किन्तु वह सर्व व्यापक सर्वान्तर्यामी होने से एक काल में सर्वत्र शासक है और अपने स्वरूप में भी है

इसलिये परमात्मा न बाह्य प्रज्ञ है न अन्तःप्रज्ञ है न उभय तो प्रज्ञ है अर्थात् वह सर्वगत है और प्रज्ञान घन भी नहीं अर्थात् सुषुप्ति की नाईं जैसे जीवात्मा सुषुप्ति में अपने स्वरूप को भूल जाता है ऐसा भी नहीं क्यों कि श्रुति कहती है कि (ब्रह्मवाइदमग्र आसीत् तदात्मान मेव वेदाह ब्रह्मास्मीति) अर्थात् इस सृष्टि के पूर्व भी ब्रह्म है और पश्चात् तथा मध्य में भी एक रस रहता है वह सदा यह जानता है कि मैं ब्रह्म हूं अर्थात् उसको अपने स्वरूप का विस्मरण कभी नहीं होता है और न प्रज्ञ है अर्थात् केवल ज्ञान मात्र ही नहीं किन्तु सर्वज्ञ है। इसलिये वह अदृष्ट अर्थात् इन्द्रियों का विषय नहीं वह अव्यवहार्य्य अर्थात् दुनयावी पदार्थों की तरह उसको कोई व्यवहार में नहीं ला सक्ता है। वह संसारी वस्तुओं की तरह ग्रहण भी नहीं हो सक्ता है। अलक्षण है जैसे संसारी वस्तुओं को चिन्हों से पहिचाना जाता है वैसे उसको नहीं पहिचान सक्के वह मन और बुद्धीसे नहीं जाना जाता वह केवल संज्ञा यानी नाम मात्र के कहने से नहीं जाना जाता अर्थात् तीन सीढ़ियोंमें जो ज्ञान का विभाग किया गया है उससे भी नहीं जाना जाता इस लिये उसमें यह कल्पना नहीं प्रपंच से उप शम अर्थात् अलग शाँति स्वरूप है कल्याण स्वरूप अद्वैत है यही चतुर्थ तुरीय दशा का ज्ञान है ।

जिज्ञासु–तो फिर कैसे जाना जाता है और पाद का ज्ञान क्या व्यर्थ ही रहा ।

माहात्मा–तीन पाद का ज्ञान और समाधि आदि कर्त्तव्य मन बुद्धि और इन्द्रियों को वश में करके समाधि की सिद्धि के

लिये है जिस के विना जीवात्मा वहाँ तक नहीं पहुंच सक्ता जब समाधि की सिद्धि हो जाती है तब बुद्धि भी मार्ग बता के पीछे रह जाती है (आत्मनात्मान वेद) आत्माही परमात्मा को जानता है पहिचानता है वही मुक्त होता है यह अमात्र चतुर्थ अवस्था का वर्णन किया ।

हे जिज्ञासु-हमने तुम्हारे लिये प्रथम मेस्मेरिज़म का स्वरूप बताया, उस के बाद अष्टाँग योग का वर्णन किया उस के पश्चात् अनेक दृष्टान्त व कहानियों से इन्द्रियाँ तथा मनको वश में करने के यत्नों को वर्णन किया उसके पश्चात् सत्यासत्य की पहचान के लिये पंचधा परीक्षाओं का वर्णन किया अन्त में ओंकार की महिमा का वर्णन चार पादसे किया अब यदि आपने कुछ समझा है और मन में कुछ शान्ति हुई है तो तुम्हारा कल्याण होगा इस का साधन करके आनन्द को प्राप्त करोगे हमारी जैसी बुद्धि थी और जैसा हम जानते थे ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे और अन्य सज्जन भी इससे लाभ उठावें ।

जिज्ञासु-महाराज मेरा आत्मा आप के उपदेश से संतुष्ट हुआ और सत्य मार्ग को पाया अन्त में कृत कृत्य हुआ और यावत् जीवन इसका अनुष्ठान करुंगा ।

जिज्ञासु—परन्तु आप इतनी कृपा और कीजिये कि मुझको योगी की दिनचर्य्या और रात्रिचर्य्या की विधि और बतला दीजिये जिससे मुझे उपासना योग में कोई विघ्न न दबा सके ।

म०—कुछ तो हम कई प्रकरणों के वर्णन कर चुके परन्तु तुम्हारी श्रद्धा के लिये कुछ नियम और भी बतलाते हैं तुम ध्यान देकर सुनो ।

१-योग के उपासक को चाहिये कि वह काम क्रोध लोभ मोह ईर्षा तृष्णा ममता इनको तथा अन्य दुर्गुणों को अपने चित्त में विल्कुल न आने देवे।

२-एकान्त वास में एकाकी रहे जन समुदाय में कभी न बैठे और ब्रह्म चर्चा के सिवाय अन्य संसारी कथाओं को कभी न सुने।

३-रात्रि के १० वजे पर शयन करे और १ प्रहर रात्रि जब शेष रहे तभी शय्या को त्याग देवे मुख में जल भरकर नेत्रों में शीतल जल के वारीकर छींटा लगाय पुनः उस मुखके पानी को बाहर छोड़कर फिर तीन आचमन करे।

४-इसके पश्चात् उपासना में मन का उत्साह बढ़ाने के लिये अर्थ विचार पूर्वक केनोपनिषद् का पाठ करे पश्चात् शौच होकर शुद्ध मृत्तिका से लिंग गुदा हस्त पाद प्रक्षालन कर दन्त धावन आदि से मुख की शुद्धि और स्नान कर सूर्योदय तक ध्यान योग में सप्तव्याहृतियों का अर्थ विचार पूर्वक मन की एकाग्रता का सम्पादन करे।

५- ओंकार के अर्थ का विचार करता हुआ मन और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति को हृदय में लेजाकर प्राण की गति को सब शरीर से आकर्षण करके योगाग्नि को प्रदीप्त करे।

६-अब सूर्योदय हो जावे तो आसन से उठकर कुछ पर्य्यटन तथा व्यायाम करे पश्चात् शीतल शरीर होने पर थोड़ा दुग्ध पान करके ११बजे तक उपनिषद् और योग सूत्रों का स्वाध्याय करे १२ वजे पर सत्वगुणी मूंग की दाल घृत भात गोधूम की वाजरा की मधूकरी आदि का भोजन करे रात्रि को दुग्ध पानके सिवाय अन्य भोजन न करे।

७-योगीको अत्यन्त सावधानी इस बातकी रखनी चाहिये कि वह ऐसे पाचक पदार्थों का भोजन करता रहे कि जिससे उदर में क़ब्ज़ न होने पावे जिससे कि कभी कोई विघ्न कारक रोग न होने पावें।

८-सादा शुद्ध देशी मोटे वस्त्र और ऋजु दण्ड एक पात्र जल के लिये सदा रक्खे।

९-इस प्रकार दिन भर स्वाध्याय और तपस्वी महात्माओं के सत्संग में समय लगावे और फिर दो घड़ी दिन रहने पर दिशा शौच से निवृत्त हो शरीर की शुद्धि करके पुनः प्रातःकाल की नाँई समाधि योग में मन लगावे।

१०-जो पुरुष सब प्राणी मात्र को अभय दान देता है किसी को नहीं सताता और ईश्वर की भक्ति में अपना आत्म समर्पण कर देता है उस ईश्वर भक्तको सब लोक प्रकाशमय होजाते हैं।

११-न अधिक जीवन की इच्छा करे और न मृत्यु से डरे किन्तु जैसे सेवक स्वामी के हुक्म की प्रतीक्षा करता रहता है उसी प्रकार काल की प्रतीक्षा करता रहे और सिद्धि होने पर प्रसन्नता से शरीर को त्यागदे।

ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवतु अर्य्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरु क्रमः। ओम् नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वादिषं ऋतम वादिषं सत्यं वादिषं तन्मा मावीत् तद वक्तार मावीत्। आवान्माम् आवीद वक्तारम्॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इति समाप्तम्
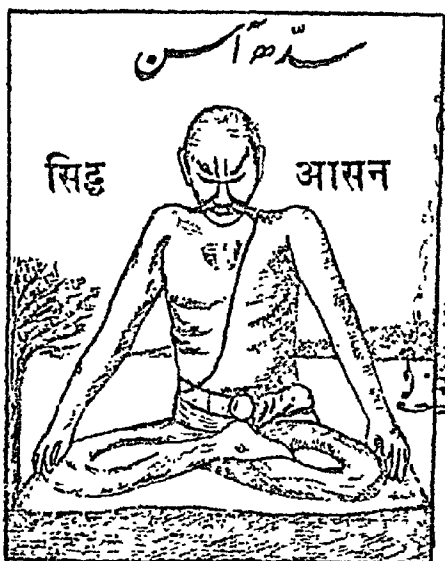
विधिः-बायें पैर की एड़ी सीवन के बीच में मज़बूत रख कर दाहिने पैर की एड़ी इन्द्री के ऊपर मज़बूती से रखनी चाहिये और ठोड़ी को हृदय में लगा कर ठहरा कर और बदन को सीधा करके दोनों भृकुटियों के बीच निगाह जमानी चाहिये इसी को सिद्धआसन कहते हैं इस आसन के करने से मन को शाँति व आरोग्यता प्राप्त होती है यह आसन मनुष्य की विषय शक्ति को कम करने वाला है।

प्रयोजन यह है कि गृहस्थियों के करने के योग्य नहीं है।

بجر آسن
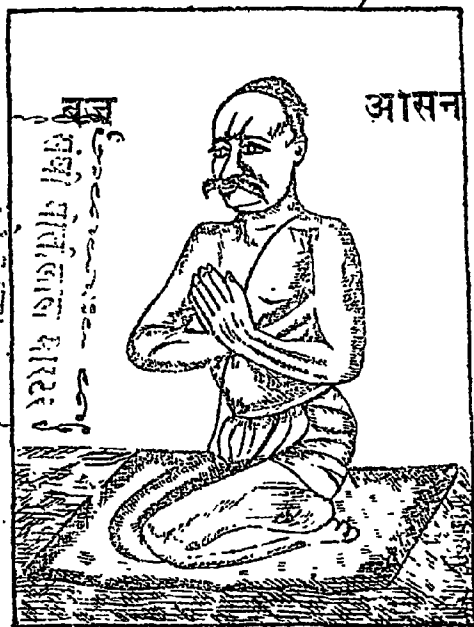
तरकीव-दोनों पिंडलियों को रानोंसे मज़बूत दवाकर घुटनों के सहारे सीधा वैठना चाहिये इसी का नाम वज़ आसन है। यह आसन योगियों को सिद्धि देने वाला है—

(۳)
سواستک آسن
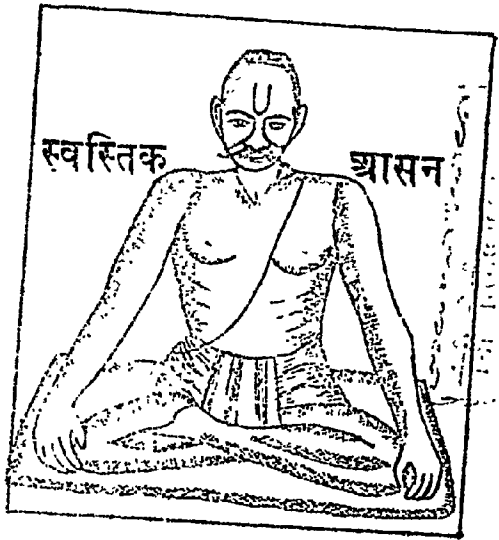
तरकीब-दोनों पैरों के तलवे पिंडली और रानों के बीच में दबा कर सीधा बैठना चाहिये इसका नाम स्वस्तिक आसन है। यह आसन बीमारी से बचाता है।

सिद्ध आसन नं० २

बायें पैर की ऐड़ी सीवन और फ़ोतों के बीच में मज़बूती से लगाये और दाहिने पैर की ऐड़ी इन्द्री के ऊपर के हिस्से में मज़बूत लगाये ठोड़ी हृदय में गले से थोड़ी दूर हृदय पर लगा कर ठहरा कर और बदन को सीधा करके पलकों और आँखों को न हिलाते हुवे भृकुटियों के बीच में निगाह को ठहरानी चाहिये हाथ चाहे घुटनों पर रक्खे चाहे बीच में रक्खे- दोनों*

*पैर एक दूसरे पर ऐसे आजायें कि दोनों की जोड़की हड्डियाँ§
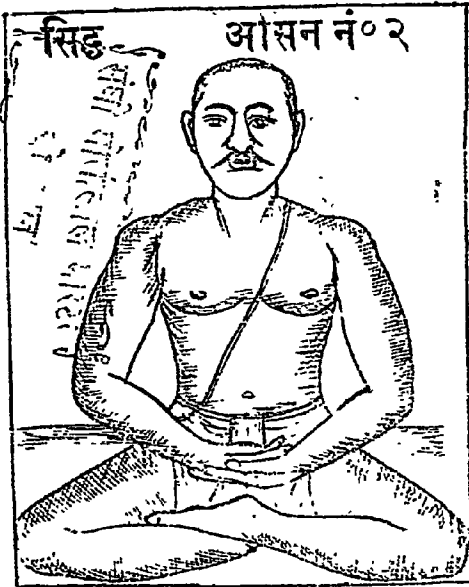
§एक दूसरे पर आजायें इसके अभ्यास से बुरी इच्छा कम होती है, और आदमी ब्रह्मचारी रहता है। इस लिये यह गृहस्थियों के लिये कम और दूसरे आदमियों के लिये ज़्यादा करना अच्छा है।
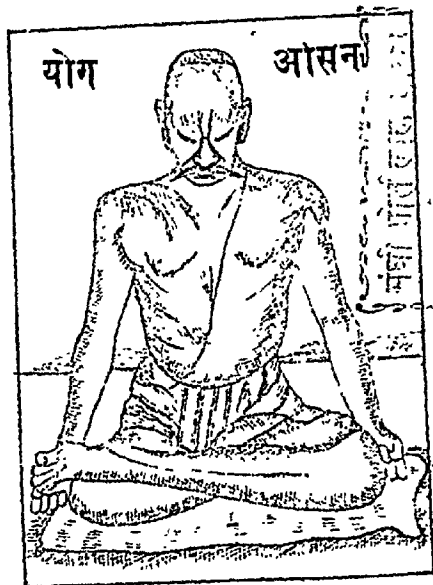
तरकीबः-दोनों घुटनों पर दोनों पैर की तली सीधी रखनी चाहिये और दोनों हथेली आसन पर सीधी रखनी चाहियें फिर प्राणायाम द्वारा साँस खींचकर नाक के अगले हिस्से पर निगाह जमाकर बैठना चाहिये इसको योग आसन कहते हैं । यह योग सिद्धि देने वाला है ।

مہا مُدرا آسن

तरकीबः-बायें पैर की गाँठ मज़बूती के साथ पाख़ाने के मुक़ाम पर जमा कर दाहिना पर सीधा फैला कर दोनों हाथों से इसकी उंगलियाँ पकड़ लेनी चाहियें-फिर ठोडी को छाती पर लगाकर दोनोंभृकुटियोंके बीचमें निगाह जमानी चाहिये पंडित लोग इसको महा मुद्रा आसन कहते हैं इस आसन के करने से बहुत सी तकलीफ़दूर हो जाती हैं—
यह आसन हर एक आदमी को करना चाहिये——

योग यानी आसन करने वालों के लिये आवश्यक सूचना

(१) योग साधन के लिये प्रातः काल का समय अति उत्तम है, साँयंकाल के समय भी योग अभ्यास कर सकते हैं।

(२) प्रातः काल के समय नित्य कर्म्म विधि से निमट कर योग अभ्यास करना चाहिये। प्रारम्भ में थोड़ी २ देर साधन करना चाहिये।

(३) योग अभ्यास प्रारम्भ करने से पहिले पेट को स्वच्छ करलेना चाहिये कब्ज़ इत्यादि की शिकायत न हो।

(४) प्रथम दिवस केवल थोड़ी देर अभ्यास करना चाहिये। और फिर शनैः शनैः उसको बढ़ाना चाहिये।

(५) सर्दी के दिवस में यदि मन ठंडे पानी से स्नान करना न चाहे तो गरम पानी से स्नान कर सकते हैं।

(६) सब से प्रथम कार्य जो मनुष्य योगअभ्यास करना चाहते हों उनको चाहिये कि अपने वीर्य्य की रक्षा करें और उसको ख़राब न करें।

(७) ग़िज़ा जो खाई जावे तो वह अत्यन्त हलकी और अच्छी हो कोई ऐसी वस्तु जैसे खटाई और कोई ऐसी वस्तु जिससे वीर्य्य नष्ट होने की आशा हो कदापि न खानी चाहिये दूध घी का प्रयोग अधिकतर करना चाहिये।

८—दिन के समय यदि हो सके तो दस पन्द्रह मिनट धूप में खड़े होकर अभ्यास करना चाहिये जिस से शरीर गरमी व सरदी सहन करने का आदि हो जावे।

९—खुले मैदान में या मकान की छतपर योग अभ्यास करना बमुकाबिले बन्द जगह के जहाँ पर हवा कम आती हो अधिक लाभ दायक है।

१०—रात के समय अत्यन्त हलका पदार्थ जैसे दूध फल इत्यादि का प्रयोग करना चाहिये जो स्त्रियाँ योग साधन करना चाहें वह भी कर सकती हैं परन्तु ब्रह्मचारी रहना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा हानि की आशा है।